भगवान महावीर का धर्मचक्र जगत के लिये मंगलकारी है

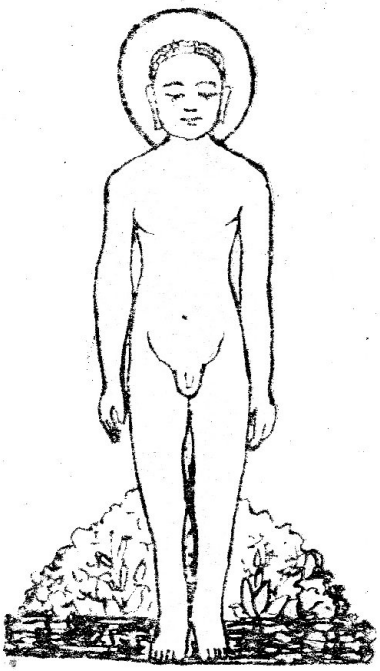

❋ आराधना - भावना ❋

सम्यक्त्व दर्शन-ज्ञान-चारित्र सदा चाहूँ भाव सों।
दसलक्षणी मैं धर्म चाहूँ महा हर्ष उछावसों॥
मैं साधुजन को संग चाहूँ, प्रीत मनवचकायजी।
आराधना उत्तम सदा चाहूँ सुनो जिनरायजी॥

तंत्री—पुरुषोत्तमदास शिवलाल कामदार संपादक—ब्रह्मचारी हरिलाल जैन
वीर सं. २५०१ भाद्रपद (वार्षिक चंदा रुपये ६=००) वर्ष ३१ अंक-५

पर्यूषण महापर्व.... उत्तमक्षमा का आराधन

श्री जिनशासन की मंगल छाया में देव-गुरु-धर्म की भक्तिपूर्वक एवं सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की भावनापूर्वक दसलक्षणी-पर्यूषण पर्व भारतवर्ष में हम सभी ने आनंद से मनायें... वीरनाथ का वीतरागी शासन धार्मिक भावनाओं से गूँज उठा। ऐसे वीतरागी पर्व की पूर्णता के अवसर में परम भक्तिपूर्वक देव-गुरु-शास्त्र के प्रति, तथा अत्यंत धर्मवात्सल्यपूर्वक समस्त साधर्मीजनों के प्रति, मैं हार्दिक क्षमापना चाहता हूँ।

श्री महावीरप्रभु के निर्वाण के ढाई हजारवर्ष की पूर्णता का जो महान वर्ष हम मना रहे हैं—इस वर्ष का यह मंगल उत्सव हमें सदा के लिये आराधना का उत्साह तथा आत्महित की प्रेरणा देता रहे, धर्मलाभ सभी को हो, तथा सर्वत्र आनंदमय धर्मप्रेम का मधुर वातावरण प्रसारित हो—ऐसी प्रार्थना है।

अहा, हमारे धनभाग्य से आज हमें वीरनाथप्रभु का परम सुंदर मार्ग मिला है; उन्हीं की वाणी का रहस्य आज श्रीगुरुओं के द्वारा हमें प्राप्त हो रहा है, और उसी वीरवाणी का अमृत 'आत्मधर्म' में परोसा जाता है। श्री देव-गुरु-धर्म के महिमा को तथा उनके मार्ग को प्रसिद्ध करने का यह कार्य आत्मधर्म के द्वारा ३२ वर्ष से हो रहा है। मेरे साधर्मीजनों से विनम्रतापूर्वक मैं सूचित करता हूँ कि अब आगामी दीपावली-विशेषांक प्रगट होने के बाद आत्मधर्म के संपादकत्व से मैं निवृत्त हो रहा हूँ।

मुमुक्षु को अपने में कषाय नहीं जँचता, और शांति जँचती है; जैसे अपने में धर्म का प्यार है उसीप्रकार साधर्मी भी उसे प्रिय लगता है। 'ये मेरे साधर्मी हैं'—ऐसी साधर्मिकता की हृदयोर्मि ही सब तरह के कषाय भाव को तोड़ देती है। साधर्मिकता के स्नेह में दुन्यवी प्रसंग अंतराय नहीं कर सकते। क्षमा तथा धर्मप्रेम के शांत भाववाला आयुध, परम अहिंसक होता हुआ भी सामनेवाले के हृदय को ऐसा वेध डालता है कि वह वश में हो जाता है... और आपस में एक दूसरे के आराधकभाव की प्रशंसा-प्रेम-प्रोत्साहन के द्वारा मित्रता का अनोखा वातावरण बना देता है... तब... सभी के अंतर की मधुर वीणा एकतान होकर गूँज उठती है कि—

आराधना जिनधर्म की अद्भुत आनंदकार।
वैरभाव कहीं है नहीं, मित्रभाव सुखकार॥

वार्षिक चंदा
छह रुपये
वर्ष ३१वाँ
अंक ४

आत्मधर्म

वीर सं. २५०१
श्रावण
ई.स. १९७५
सितम्बर

मंगल अवसर

मत चूकियो

भगवान महावीरप्रभु दिव्यध्वनि के द्वारा रत्नत्रय-तीर्थ का प्रवर्तन करके मुक्तिपुरी में पधारे... ढाई हजार वर्ष बीत चुके इस बात को। आज इसका भव्य महोत्सव पूरे वर्ष तक हम सब अत्यंत हर्षानंद के साथ मना रहे हैं। जैन समाज में जागृति का एक बाढ़ आया है... और सर्वत्र महावीरशासन का प्रभाव दिख रहा है... ऐसा लगता है कि सारा जगत भगवान महावीर के नाम पर फिदा-फिदा है।

अब तो हमारा यह वार्षिक-उत्सव पूर्णता की ओर पहुँच रहा है। अहा, ऐसा उत्सव हमारे जीवन में आया... हम वीर के भक्त एवं पादविहारी बने—यह कितने गौरव की बात है! बंधुओं! दुर्लभ त्रसपर्याय, उसमें भी संज्ञीत्व तथा मनुष्यपर्याय, भारत जैसा उत्तम देश, श्रावक का कुल तथा जैनधर्म के देव-गुरु, आत्मा का स्वरूप दिखानेवाली माता-जिनवाणी, समयसार जैसे अध्यात्मशास्त्र का श्रवण—इतनी सब दुर्लभ से दुर्लभ वस्तुएँ, इस समय हमें प्राप्त हुई हैं, तदुपरांत आत्महित की बुद्धि भी जागृत हुई है, तो हे भाई! प्रभु के शासन में अपने आत्महित के इस महान अवसर को मत चूकना... सम्यग्ज्ञान के द्वारा परम सुख को प्राप्त कर लेना... ऐसी श्रीगुरु की सीख है।

—जय महावीर

दसलक्षणी-पर्यूषणपर्व की मंगल प्रसादी

भाद्र शुक्ला पंचमी : आज से वीतराग जिनशासन में दसलक्षणी पर्यूषणपर्व का प्रारंभ हो रहा है; यह पर्व वर्ष में तीन बार आता है। आज उत्तम-क्षमा का प्रथम दिवस है। कार्तिकस्वामी द्वादशअनुप्रेक्षा में कहते हैं कि—हे जीव! उत्तम क्षमा-मार्दव-आर्जव-शौच-सत्य-संयम-तप-त्याग-आकिंचन्य तथा ब्रह्मचर्य—ऐसे दस प्रकार के उत्तम वीतरागी धर्मों को तुम भक्तिपूर्वक जानो।

ये दसों ही धर्म चारित्र के प्रकार हैं; इनकी विशेष आराधना मुनिवरों को होती है; और धर्मीगृहस्थ को भी सम्यग्दर्शनपूर्वक उनकी एकदेश आराधना होती है। प्रथम तो क्रोध से रहित शांत-क्षमास्वभावी आत्मा-उसका भान हो, तब सम्यग्दर्शन होता है; इसके बाद उसकी विशेश वीतरागता होने पर, क्रोधरहित ऐसा क्षमाभाव हो जाता है कि—तिर्यंच, मनुष्य आदि के द्वारा घोर उपद्रव के होने पर भी वह अपनी क्षमा की शांति से डिगते नहीं और क्रोध करते नहीं। चाहे शरीर के ऊपर घोर उपसर्ग होता हो, तीव्र निंदा होती हो, कोल्हू में पीला जाता हो, तो भी उपसर्ग करनेवाले के प्रति क्रोध की वृत्ति न हो, आप अपने आत्मा की वीतरागीशांति के वेदन में ही रहे, उस जीव को उत्तम क्षमाधर्म की आराधना होती है। जीवों को ऐसी आराधना करने योग्य है।

देखो, ऐसा क्षमाधर्म और ऐसे धर्म की उपासनारूप सच्चा पर्यूषणपर्व आज से प्रारंभ हो रहा। वैसे तो धर्म की उपासनारूप पर्यूषण धर्मीजीव के-मुनिवरों के सर्वदा प्रतिदिन चलता ही रहता है, परंतु ये दस दिन विशेष उत्सवरूप से माने जाते हैं। ऐसे उत्तम धर्मों का सत्य स्वरूप वीतरागी देव-शास्त्र-गुरु के मार्ग में ही प्राप्त होता है। जिसके देव-शास्त्र-गुरु ही असत्य हो, उसे सच्चे धर्म की उपासना नहीं होती। अतः धर्म की पर्यूषणा नहीं होती। अरे, क्रोध तथा चैतन्य की भिन्नता का भेदज्ञान ही जहाँ नहीं है, वहाँ क्षमाधर्म कैसे होगा? नहीं हो सकता। अतः प्रथम क्रोध तथा उपयोग का भेदज्ञान करके, ज्ञानमात्र उपयोगस्वरूप मैं हूँ—ऐसी

अनुभूति करके धर्मी जीव को वीतरागी चारित्ररूप क्षमाधर्म की भावना-उपासना करना चाहिये। सम्यग्दर्शन के होते ही अनंतानुबंधी क्रोध का तो अभाव हुआ, और वीतरागी क्षमा के एक अंश का स्वाद चख लिया। सम्यग्दर्शनपूर्वक की ऐसी वीतरागी क्षमा, वही उत्तम क्षमा है। अहा, मुनिराज तो क्षमा की मूर्ति हैं, उनकी चारित्रदशा का क्या कहना? अत्यन्त आदर-भक्तिपूर्वक उसकी पहचान करके उसकी भावना करना... यह पर्यूषण है।

भाद्र शुक्ल पंचमी : पर्यूषण के मंगल प्रारंभ के निमित्त से आज सोनगढ़ में भगवान जिनेन्द्रदेव की भव्य रथयात्रा निकली थी। रथयात्रा के बाद परमागम मंदिर में वीरनाथ महादेव के समक्ष भक्तिभीना पूजन-अभिषेक हुआ था। वीतरागधर्म की आराधनारूप पर्यूषण के इन दिनों में चारित्रवंत मुनिभगवंतों का तथा रत्नत्रयधर्म का महिमा क्षण-प्रतिक्षण प्रसिद्ध हो रहा था। प्रवचन के समय परमागममंदिर में प्रभु कुन्दकुन्दस्वामी, अमृतचंद्रस्वामी, पद्मप्रभस्वामी जैसे रत्नत्रयवंत मुनि भगवंत मानों हमारे सम्मुख ही विराज रहे हो—ऐसे भाव से श्री कानजीस्वामी कहते थे कि—वाह, देखो वीतरागी संतों की वाणी! अहा, वीतरागी संतों की वाणी ही सुन रहे हों - ऐसे भाव उल्लसित होते थे, और उन रत्नत्रयधारी मुनिभगवंतों के प्रति परमभक्ति से हृदय झुक जाता था।

दोपहर के प्रवचन में नियमसार की पाँच रत्न जैसी पाँच (७७ से ८१) गाथाओं के द्वारा समस्त परभावों से भिन्न शुद्धस्वरूप की भावना का घोलन चलता था। श्री मुनिराज स्वयं कहते हैं कि ये पंच रत्नों के द्वारा जिसने समस्त विषयों के ग्रहण की चिंता को छोड़ दी है, और निज द्रव्य-गुण-पर्याय के स्वरूप में चित्त को एकाग्र किया है, वह भव्य जीव निजभावों से भिन्न सकल विभावों को दूर करके शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त करता है।

भेदज्ञान के द्वारा शुद्ध जीवास्तिकाय के अभ्यास से, अर्थात् बारबार अनुभव करने से चारित्रदशा प्रगट होती है। सम्यग्दृष्टि जीव शुद्ध द्रव्य-गुण-पर्यायस्वरूप अपने शुद्ध जीवास्तिकाय में अन्य सकल परभाव के कर्तृत्व का अभाव जानता है; वह अपने को सहज चैतन्य के विलासस्वरूप ही भाता है। जैसे - श्रेणिकराजा क्षायिक सम्यग्दृष्टि हैं, तीर्थंकर प्रकृति का बंधन उनके हो रहा है, इस समय पहली नरक में होते हुए भी वे ऐसा जानते हैं कि यह नरकपर्याय के कर्तृत्व-भोक्तृत्व से रहित सहज चैतन्य के विलासस्वरूप आत्मा मैं

हूँ।—ऐसी परिणति का परिणमन उनको चल ही रहा है। चाहे सिंह-बाघ-हाथी आदि तिर्यंच हो—वह भी आत्मा का ज्ञान होने पर ऐसा जानते हैं कि सहज चैतन्यस्वरूप शुद्ध जीवास्तिकाय जो मेरा स्वरूप है—उसमें यह तिर्यंचपर्याय के कर्तृत्व का भाव नहीं है, अतः तिर्यंचपर्याय का कर्तृत्व मेरे में नहीं है; सहज चैतन्य का जो विलास है, उसका ही मैं कर्ता हूँ।—ऐसी शुद्ध चेतनापरिणति उन्हें वर्तती है, उसमें सभी परभावों का प्रतिक्रमण है।

मनुष्य तथा देवपर्याय में भी जो सम्यग्दृष्टि-धर्मात्मा जीव हैं, वे अपने आत्मा को, उस-उस विभावगतिपर्याय के कर्तृत्व से रहित, ज्ञानचेतनास्वरूप शुद्ध जीवास्तिकायरूप ही अनुभव में लेते हैं। चार गति विभावपर्याय हैं; उनके कारणरूप भाव भी विभावभाव हैं; इन सब विभावभावों से पार अतीन्द्रिय ज्ञानचेतना है, ऐसी ज्ञानचेतनारूप परिणत धर्मात्मा अपने आत्मा को सहज चैतन्य के विलासरूप जानता है। ऐसे आत्मा की अनुभूतिरूप उपासना, यही सत्य पर्यूषण है। ऐसा अनुभव करनेवाले जीव को अपने में सदैव पर्यूषण ही है।

* सर्वज्ञता की महत्ता; अपनी अल्पज्ञता की निर्मानता *

पर्यूषण दूसरा दिन - भाद्र शुक्ल ६; वीतरागी निर्मानतारूप उत्तम मार्दव धर्म का दिवस। अहा, मुनिवरों के वीतरागचारित्रधर्म की क्या बात! उसकी महिमा अपार है; ऐसे धर्मवंत किसी उत्तम मुनि को विशेष शास्त्रज्ञान हो, महान तपस्वी हो, अनेक लब्धियाँ प्राप्त हुई हों—तो भी वे मान नहीं करते, निर्मान ही रहते हैं। जिसने सर्वज्ञस्वभाव की दिव्य महानता को नहीं जाना है, वही थोड़ी सी जानकारी में अभिमान करता है। अरे, सर्वज्ञदेव तथा द्वादशअंगधारी श्रुतकेवली भगवंत के हिसाब से मेरा यह ज्ञान अत्यंत अल्प है; चैतन्य का स्वभाव तो इतना महान है कि जिसमें से सर्वज्ञपद प्रगट होना चाहिये; तब फिर अल्पज्ञान का गर्व कैसा?—ऐसे भाव में धर्मी जीव निर्मद रहता है। प्रतिकूलता हो, चाहे अनुकूलता, वे अपने उपशांतभाव में रहते हैं, मान-अपमान में समभाव से रहते हैं; मान भी नहीं करते एवं अपजशादि के प्रसंग में खेद-खिन्न भी नहीं होते।—ऐसा मार्दव धर्म होता है।

अहा, आत्मा का सर्वज्ञस्वभाव जिसकी प्रतीत में आया, वह जीव अल्पता का गौरव या बड़ाई कैसे करेगा? इसप्रकार आत्मा के पूर्णस्वभाव की महत्ता जानकर उसकी आराधना से वीतरागता तथा निर्मानता होती है, वही उत्तम मार्दव धर्म है; उसकी जो उपासना वही पर्यूषणा

(पर्यूपासना) है। ऐसे वीतरागधर्म की उपासना मुख्यतः मुनियों के होती है, तथा धर्मी-गृहस्थ के भी अपनी भूमिका के अनुसार ऐसे धर्म की उपासना होती है। अतः आचार्यदेव कहते हैं कि हे भव्य जीवो! तुम ऐसे उत्तम दस धर्मों को जानकर परम भक्तिपूर्वक उनकी उपासना करो।

* निजतत्त्व में एकाग्रता, यही मोक्ष की आराधना *

पाँच रत्नों के द्वारा जैनशासन के सारभूत आतमा का परमार्थस्वरूप दिखाकर कहते हैं कि—निर्मल द्रव्य-गुण-पर्यायरूप जो स्वतत्त्व, उसमें भेद की चिन्ता को छोड़कर अभेददृष्टि से जो एकाग्र हुआ, वह भव्य जीव निजस्वरूप में एकाग्रता से अल्पकाल में मोक्ष को पाता है। देखो, शुद्ध द्रव्य-गुण-पर्यायस्वरूप निजतत्त्व कहा,—वह मोक्ष का कारण है। शुद्धता का कारण होने का स्वभाव तो द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों में है; किंतु रागादि अशुद्धता का कारण होने का स्वभाव द्रव्य-गुण में नहीं है, अशुद्धता का कारण तो मात्र उसी क्षणिक पर्याय में ही है, अतः वह भूतार्थस्वभाव नहीं है; जबकि शुद्धपर्याय के साथ में तो शुद्ध द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों ही कारणरूप से खड़े हैं; उसी के आश्रय से शुद्धपर्याय हुई; ऐसे शुद्ध द्रव्य-गुण-पर्याय से एकाकाररूप निजतत्त्व में एकाग्रता से मोक्षपद की प्राप्ति होती है। (-देखो, नियमसार गाथा १०९) १४ गुणस्थान के भेद या १४ मार्गणास्थान के भेद—ऐसे किसी भेद का स्वीकार सम्यग्दर्शन नहीं करता, अतः उन सब भेदों को परभाव कहा है। अभेदरूप आत्मा परमतत्त्व है, उसी को सम्यग्दर्शन स्वीकार करता है; और उसके स्वीकार में जो शुद्धपर्याय वर्तती है—वह मोक्ष का कारण है।

卐 वीतरागविज्ञान - प्रश्नोत्तर 卐

छहढाला के मंगलाचरण में वीतरागविज्ञान को नमस्कार किया है। प्रथम ढाल में चार गति के कैसे-कैसे दु:ख जीव भोग रहा है, यह दिखलाया है; दूसरी ढाल में उन दु:खों के कारणरूप मिथ्यात्वादि के त्याग का उपदेश दिया; तीसरी में सम्यक्त्व की महिमा समझाकर उसकी आराधना करने का कहा। इसके बाद चौथी ढाल में सम्यग्ज्ञान की आराधना का तथा देशव्रत का उपदेश है; इस ढाल के प्रवचन के आधार से छोटे-छोटे सुगम प्रश्नोत्तर का यह संकलन किया गया है।

—ब्रह्मचारी हरिलाल जैन

१. सम्यग्ज्ञान कैसा है ? —स्व-पर के प्रकाशन के लिये सूर्य के समान है।

२. सम्यग्ज्ञान कब होता है ? —सम्यग्दर्शन के साथ में ही होता है।

३. सम्यग्दर्शन-ज्ञान दोनों एक साथ होते हुए भी ज्ञान की जुदी आराधना करने का क्यों कहा ? —क्योंकि अभी केवलज्ञान साधने का बाकी है - इसलिये।

४. सम्यक्त्व की आराधना कब पूर्ण होती है ? —क्षायिकसम्यक्त्व के होने पर।

५. ज्ञान की आराधना कब पूरी होती है ? —केवलज्ञान के होने पर।

६. चौथे गुणस्थान में क्षायिक सम्यक्त्व होने के बाद ऊपर के गुणस्थान में उसकी शुद्धता बढ़ती है क्या ? —ना; क्षायिकभाव में वृद्धि-हानि नहीं होती।

७. मोक्षमार्ग में सच्चा ज्ञान कैसा है ? —जो स्व-पर को जाने, तथा मोक्ष को साधे ऐसा।

८. सम्यग्दर्शन द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करता है, क्या ? —ना; वह एक अभेद आत्मा को ही देखता है।

९. दुनिया में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहाँ है ? —एकमात्र सर्वज्ञ-जिनदेव के मार्ग में ही है।

१०. जिनदेव के मार्ग के अतिरिक्त अन्य किसी मार्ग में मोक्षमार्ग होता है क्या ? —ना।

११. अनेकांतमयमूर्ति सदा प्रकाशमान रहो - ऐसा कहाँ कहा है ? —समयसार के दूसरे कलश में।

१२. पदार्थ के धर्म कौन से हैं ? —वस्तु के गुण-पर्याय ही उसके धर्म हैं।

१३. आत्मवस्तु में किसका सामर्थ्य है ? —केवलज्ञान तथा सिद्धपद का।

१४. मोक्ष पाने के लिये किसका सेवन करना ? —सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का।

१५. शुभराग का या पुण्य का सेवन करने का क्यों न कहा ? — क्योंकि वह मोक्ष का कारण नहीं है।

१६. क्या एक वस्तु का कोई धर्म किसी अन्य वस्तु के आधार से होता है ? —ना; वस्तु के धर्म पर की अपेक्षा नहीं रखते।

१७. क्या एक वस्तु का धर्म अन्य वस्तु में चला जाता है ? —ना; वस्तु का धर्म वस्तु में ही तन्मय रहता है।

१८. क्या चारित्र के बिना मोक्ष हो सकता है ? —ना।

१९. क्या सम्यग्दर्शन-ज्ञान के बिना चारित्र होता है ? —ना।

२०. सम्यग्ज्ञान कब होता है ? —सम्यग्दर्शन के साथ ही।

२१. सम्यक्श्रद्धा तथा सम्यग्ज्ञान की आराधना में कौन सी विशेषता है ? —दोनों आराधना का प्रारंभ एकसाथ होता है, परंतु पूर्णता दोनों की एकसाथ नहीं होती, उसमें क्रम पड़ता है।

२२. राग को कौन जानता है ? —राग से भिन्न ऐसा ज्ञान ही राग को जानता है।

२३. ज्ञान तथा राग कैसा है ? —दोनों के स्वभाव अत्यंत भिन्न हैं; राग में चेतकपना नहीं है, ज्ञान स्व-पर का चेतक है।

२४. राग को जानता हुआ ज्ञान उसमें तन्मय होता है, क्या ? —ना, वह राग से भिन्न ही रहता है।

२५. राग कैसा है ? —राग परमार्थतः स्वतत्त्व नहीं है, मंगलरूप नहीं है।

२६. वीतरागविज्ञान कैसा है ? —वह स्वतत्त्व है, मंगलरूप है, जगत में साररूप है।

२७. मिथ्यात्वसहित जो शुभाचरण हो वह कैसा है ? —वह मिथ्या आचरण है, संसार का कारण है।

२८. उस शुभराग से जीव को सुख तो मिलता है न ? —ना; राग से सुख किंचित् भी नहीं मिलता, दु:ख ही मिलता है।

२९. मोक्ष का प्रथम सोपान क्या है ? —सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञान।

३०. उसको कब धारण करना ? —शीघ्र... अभी... इसी समय।

३१. जीव अनादि से क्या कर रहा है ? —अज्ञान से संसारदु:ख ही भोग रहा है।

३२. क्या वह कभी स्वर्ग में गया होगा ? —हाँ, अनन्त बार जा चुका है।

३३. स्वर्ग में भी वह सुखी क्यों न हुआ ? —क्योंकि वहाँ भी उसने सम्यग्दर्शन न किया।

३४. जीव के लिये अपूर्व क्या है ? — सम्यग्दर्शन की प्राप्ति।

३५. संसार की चारगतियों के चक्कर से थक गया हो, उसे क्या करना चाहिये ? —सम्यग्दर्शन और आत्मज्ञान।

३६. मोक्षसुख की चाहना हो, उसे क्या करना चाहिये ? —सम्यग्दर्शन और आत्मज्ञान।

३७. सम्यग्दर्शन-ज्ञान की प्राप्ति कहाँ से होती है ? —अपने में से होती है, अन्य से नहीं।

३८. देव-गुरु-शास्त्र क्या कहते हैं ? —तू हमारे सामने मत देख; स्वयं अपनी ओर देख।

३९. सम्यग्दर्शन के साथ में क्या होता है ? —अनंतानुबंधी के अभावरूप स्वरूपाचरण होता है।

४०. जीव को सम्यग्दर्शन होने पर क्या हुआ ? —वह मोक्ष के मार्ग में चलने लगा।

४१. क्या ऐसा नियम है कि सम्यग्दर्शन के साथ में मुनिदशा हो ? —ना; भजनीय है, हो या न भी हो।

४२. क्या ऐसा नियम है कि मुनिदशा में सम्यग्दर्शन हो ? —हाँ; सम्यग्दर्शन के बिना मुनिपद नहीं होता।

४३. अज्ञानी पुण्य करके स्वर्ग में जाये तो वह सुखी है क्या ? —नहीं।

४४. अशुभ या शुभराग कैसा है ? —राग है सो आग है, वह शांति को जलाता है।

४५. आत्मा कैसा है ? —महान शांति का चैतन्यसागर है।

४६. छह मास आठ समय में कितने जीव मोक्ष पाते हैं ? — ६०८ जीव मोक्ष पाते हैं।

४७. वे सब किस रीति से मोक्ष को पाते हैं ? —आत्मा को पहचानकर उसके ध्यान से।

४८. चैतन्यस्वभाव, क्रोधादि विभाव तथा परद्रव्य कैसा है ?

—चैतन्यस्वभाव महान सामर्थ्यवान है, विभाव विपरीत है, परद्रव्य पृथक् है।

४९. सिद्धभगवंत के पंथ में आना हो तो क्या करना ? —भेदज्ञान का अभ्यास करके स्वसन्मुख होना।

५०. कितने पशु अभी मोक्षमार्ग को साध रहे हैं ? —असंख्य पशु इस समय भी आत्मा को जानकर मोक्षमार्ग को साध रहे हैं।

५१. बाह्यविषय में या राग में सुख माननेवाला कैसा है ? —वह अपने आत्मा को अज्ञान की आग में जलाता है।

५२. शुभराग से क्या होता है ? —बाह्य विषयों मिलते हैं, किंतु आत्मा का सुख नहीं मिलता।

५३. सम्यग्ज्ञान से क्या होता है ? — अहा, चैतन्य की शीतल शांति के फव्वारे उछलते हैं।

५४. आत्महित के लिये हमें समय नहीं – ऐसा कहनेवाला कैसा है ? —उसको आत्मा का रस नहीं है, आत्मा का प्रेम नहीं है।

५५. जीव ने सबसे अधिक अवतार किस गति में किया ? —तिर्यंचगति में।

५६. जीव ने स्वर्ग तथा नरक का अवतार कितनी बार किया ? —सामान्यत: अनंत बार।

५७. सामान्यत: जीव मनुष्य अवतार कब पाता है ? — असंख्यबार देव-नारकी होता है, तब एकबार मनुष्य होता है।

५८. ऐसा महँगा मनुष्यत्व पाकर क्या करना चाहिये ?

—अन्य लाख कार्य छोड़ करके भी आत्मा की पहचान करो।

५९. ज्ञानी राग से दूर क्यों नहीं भागते ?

—उनकी चेतना राग से भागी हुई (दूर, पृथक्) ही है।

६०. सम्यक्त्व होने पर आत्मा में कैसी मौसम आयी ?

— श्रावण आया... शांतरस की वर्षा हुई... स्वानुभूति की बिजली चमकी... और आनंद के अंकुर प्रगटे।

६१. शास्त्र का अभ्यास करके क्या करना चाहिये ?

— आत्मा में वैसे भावरूप परिणमन करना चाहिये।

६२. रागभाव और चैतन्यभाव में कौन-सा तफावत है ?

— राग अंधा है, चैतन्य देखता है, दोनों अत्यंत भिन्न हैं।

६३. आत्मा का श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र कैसा है ? — मोक्ष के कारणरूप स्वभाववाला है।

६४. शुभराग कैसा है ? — वह संसार का कारण है, मोक्ष का नहीं।

[क्रमशः]

अनित्यभावना

जीवन क्षणभंगुर है; बादलों की भाँति देखते ही देखते विलीन हो जाता है। धन-दौलत-मकान-कुटुंब-शरीरादि जो भी दिखाई देते हैं, वे सब नश्वर हैं; भोगोपभोग अनित्य हैं, वे किसी के भी साथ प्रीति नहीं करते; पुण्यशाली चक्रवर्ती को भी जब तक पुण्य का उदय रहता है, तभी तक वे भोगोपभोग की सामग्रियाँ रहती हैं; पुण्य पूरा हो जाने पर वे भी छोड़कर चली जाती हैं। जग में एक अपना आत्मा ही ऐसी वस्तु है जो सदा शाश्वत् रहता है, जिसका कभी वियोग नहीं होता। इसलिये हे आत्मा! तू समस्त बाह्य वस्तुओं से ममत्व को हटाकर स्व में ही स्थिर हो—यही तेरी वस्तु है।

अध्यात्मरस घोलन

'पाहुडदोहा' का अनुवाद [४]

१५१. गुणरत्ननिधि (अर्थात् समुद्र) का संग छोड़ने से शंख की कैसी हालत होती है ?—बाजार में उसका विक्रय होता है, और बाद में किसी के मुँह से फूंका जाता है; इसमें भ्रांति नहीं। (गुणीजन का संग छोड़ने में ऐसा बेहाल हाता है।)

१५२. हे हताश मधुकर! कल्पवृक्ष की मंजरी का सुगंधयुक्त रस चख करके भी अब तू गंधरहित पलाश के ऊपर क्यों भ्रमता-फिरता है ?—अरे! ऐसा करते हुए तेरा हृदय फट क्यों नहीं गया ? और तू मर क्यों नहीं गया ? (अत्यंत मधुर चैतन्यरस का स्वाद लेने के बाद, अन्य नीरस विषयों में उपयोग का भ्रमण हो-उसमें ज्ञानी को मरण जैसा दुःख लगता है।)

१५३-१५४. मूंड मुंडाया, उपदेश लिया, धर्म की आशा बढ़ी, एवं कुटुम्ब को छोड़ा, पर की आशा भी छोड़ी—इतना सब करने पर भी जो नग्नत्व से गर्वित है और त्रिगुप्ति की परवाह नहीं करता (अथवा वस्त्रधारी-धर्मात्माओं के प्रति तिरस्कार करता है) उसने तो बाह्य या अंतरंग एक भी ग्रंथ-परिग्रह को नहीं छोड़ा।

१५५. अरे, इस मनरूपी हाथी को विंध्य पर्वत की ओर जाने से रोको; अन्यथा वह शील के वन को तोड़ देगा, तथा जीव को संसार में पटक देगा।

१५६. जो पढ़े-लिखे हैं, जो पंडित हैं, जो मान मर्यादावाले हैं, वे भी महिलाओं के पिण्ड में पड़कर चक्की के पाट के समान चक्कर काटते हैं।

१५७. हे विषयांध! तब तक ही तू विषयों को मुष्ठि में लेकर चाख ले-कि जब तक जिह्वा लोलुपी शंख की तरह तेरा शरीर सड़कर शिथिल हो जाये! (रे मूर्ख! क्षणभंगुर विषयों में क्यों राचता है ?-वे तो क्षण में सड़ जायेंगे।)

१५८. जैसे वन में ऊँट ने प्रवेश किया हो वैसे हे जीव! तू तड़ातड़ पत्तियाँ तोड़ता है, परन्तु मोह के वशीभूत होकर तू यह नहीं जानता कि कौन तोड़ता है और कौन टूटता है? (-वनस्पति में भी तेरे जैसा जीव है-ऐसा तू जान और उसकी हिंसा न कर।)

१५९. पत्ता, पानी, दर्भ, तिल-इन सबको तू सवर्ण (वर्णसहित, अचेतन) जान; फिर यदि मोक्ष में जाना हो तो उसका कारण कोई अन्य ही है - ऐसा जान। (पत्ते-पानी आदि वस्तु देव को चढ़ाने से मुक्ति नहीं मिलती, मुक्ति का कारण अन्य ही है।)

१६०. हे योगी! पत्तों को मत तोड़ और फलों को भी हाथ मत लगा; किंतु जिसके लिये तू इन्हें तोड़ता है, उसी शिव को यहाँ चढ़ा दे! (व्यंग करते हुए कवि कहता है कि हे शिवपुजारी! वे शिव यदि पत्ते से ही प्रसन्न हो जाते हैं तो उन्हें ही वृक्ष के ऊपर क्यों नहीं चढ़ा देता?)

१६१. देवालय के पाषाण, तीर्थ का जल, या पोथी के काव्य, इत्यादि जो भी वस्तु फूलीफली दिखती है, वे सब ईंधन हो जायेगी। (उन सबको क्षणभंगुर जानकर अविनाशी आत्मा को ध्यावो।)

१६२. अनेक तीर्थों में भ्रमण करने पर भी कुछ फल तो न हुआ। बाह्य में तो पानी से शुद्ध हुआ परन्तु अन्तर में कौनसी शुद्धि हुई?

१६३. हे वत्स! अनेक तीर्थों में तूने भ्रमण किया, और शरीर के चमड़े को जल से धोया, परन्तु पापमल से मलिन ऐसे तेरे मन को तू कैसे धोयेगा?

१६४. हे जोगी! जिसके हृदय में जन्म-मरण से रहित एक देव निवास नहीं करता, वह जीव पर-लोक में (मोक्ष को) कैसे पावेगा?

१६५. एक तत्त्व तो अच्छी तरह जानता है, दूसरा तत्त्व कुछ नहीं जानता। सर्व को जाननेवाले ऐसे आत्मतत्त्व का चरित्र देव भी नहीं जानते; जो अनुभव करता है, वही उसको अच्छी तरह जानता है। पूछताछ से इसकी संतृप्ति कैसे होवे। (आत्मतत्त्व स्वानुभवगम्य है, वाद-विवाद से या पूछताछ से वह प्राप्त नहीं होता।)

१६६. जानते हुए भी, वह तत्त्व लिखने में नहीं आता, पूछनेवालों से कहा भी नहीं जाता; कहने से किसी के चित्त में वह नहीं ठहरता। अथवा गुरु के उपदेश से यदि किसी के चित्त में वह ठहरता है तो उसे चित्त में धारण करनेवाले को वह सर्वत्र अन्तरंग में स्थित रहता है।

१६७. नदी का जल, जलधि के द्वारा विरुद्ध दिशा में धकेला जाता है, बड़ा जहाज भी पवन के संघर्ष से विरुद्ध दिशा में खींच जाता है; वैसे ज्ञान और अज्ञान का संघर्ष होने पर दूसरी ही प्रवृत्ति होती है। (कुसंग से जीव अज्ञान की ओर खिंच जाता है।)

१६८. आकाश में जो विविध शब्द (अर्थात् दिव्यध्वनि का उपदेश) है—सुमति उसका अनुसरण करता है किंतु दुर्मति जीव उसका अनुसरण नहीं करता। पाँच इन्द्रियसहित मन जब अस्त हो जाता है, तब परमतत्त्व प्रगट होता है, उसमें हे मूढ़! तू स्थिर हो।

१६९. अरे रे, अक्षय निरामय परमगति की प्राप्ति अभी तक न हुई! मन की भ्रांति न मिटी, और ऐसे ही दिवस बीते जा रहे हैं।

१७०. हे योगी! विषयों से तेरे मन को रोककर शीघ्र सहज अवस्थारूप कर; अक्षय निरामय स्वरूप में प्रवेश करते ही स्वयं उस मन का संहार हो जायेगा।

१७१. अक्षय निरामय परमगति में प्रवेश करके मन को छोड़ दे।—ऐसा करने से तेरी आवागमन की बेल टूट जायेगी—इसमें भ्रान्ति न कर।

१७२. इसप्रकार चित्त को अविचल स्थिर करके आत्मा का ध्यान होता है, तथा अष्टकर्म को नष्ट कर सिद्धि महापुरी में गमन होता है।

१७३. स्याही से लिखे गये ग्रंथ पठन करते-करते क्षीण हो गये, परंतु हे जीव! तू कहाँ उत्पन्न हुआ और कहाँ लीन होगा—इस एक परम कला को तूने न जानी। (मात्र शास्त्र पठन किया किंतु आत्मा को न जाना!)

१७४. जिन्होंने दो को मिटकर एक कर दिया (-भेद मिटाकर अभेद किया, राग-द्वेष मिटाकर समभाव किया), और विषय-कषायरूपी बेल के द्वारा मननी बेलि को चरने नहीं दी, ऐसे गुरु की मैं शिष्यानी हूँ, अन्य किसी की लालसा मैं नहीं करती।

१७५. आगे-पीछे, दशों दिशाओं में जहाँ मैं देखूँ वहाँ सर्वत्र वही है; बस, अब मेरी भ्रांति मिट गई, अन्य किसी से पूछने का न रहा।

१७६. जैसे लवण पानी में विलीन हो जाता है, वैसे चित्त चैतन्य में विलीन होने पर जीव समरसी हो जाता है। समाधि में इसके सिवाय और क्या करना है?

१७७. यदि एक बार भी उस चैतन्यदेव के पद को पाऊं तो उसके साथ मैं अपूर्व क्रीड़ा करूँ; जैसे कोरे घड़े में पानी की बूँद सर्वांग प्रवेश कर जाती है, वैसे मैं भी उसके सर्वांग में प्रवेश कर जाऊँ।

१७८. एक तीर्थ से दूसरे तीर्थ में भ्रमण करनेवाला जीव मात्र देह को संताप करता है; आत्मा में आत्मा को ध्यान से निर्वाण पद की प्राप्ति होती है; अतः हे जीव! तू आत्मा को ध्याकर निर्वाण की ओर पैर बढ़ा।

१७९. हे योगी! जिस पद को देखने के लिये तू अनेक तीर्थों में भ्रमण करता फिरता है, वह शिवपद भी तेरे साथ ही साथ घूमता रहता, फिर भी तू उसे न पा सका! (-क्योंकि तेरे शिवपद को तूने बाहर के तीर्थों में खोजा परंतु अंतरस्वभाव में दृष्टि न करी।)

१८०. मूढ़ जीव, लोगों के द्वारा बनाये गये देवल में देव को खोजते हैं, परंतु अपने ही देहदेवल में जो शिवसंत विराजमान है, उसको वे नहीं देखते।

१८१. हे योगी! तूने बायीं ओर तथा दाहिनी ओर सर्वत्र इंद्रिय-विषयरूपी ग्राम बसाये, परंतु अंतर को तो सूना रखा... वहाँ भी एक अन्य (इंद्रियातीत) नगर को बसा दे।

१८२. हे देव! मुझे तुम्हारी चिंता है—जब यह मध्याह्न का प्रसार बीत जायेगा तब तू तो सोता रहेगा और यह पाली सूनी पड़ी रहेगी। (जब तक आत्मा है, तब तक इंद्रियों की यह नगरी बसी हुई दिखती है; आत्मा के चले जाने पर वह सब सुनकार उज्जड़ हो जाता है—अतः विषयों से विमुख होकर आत्मा को साध लेना चाहिए।)

१८३. हे स्वामी! मुझे कोई ऐसा अपूर्व उपदेश दीजिये कि जिससे मिथ्याबुद्धि तड़ाक से टूट जाये और मन भी अस्तंगत हो जाये। अन्य कोई देव का मुझे क्या काम है?

१८४. जो सकलीकरन को या पानी-पत्र के भेद को नहीं जानता, तथा आत्मा का परमात्मा के साथ संबंध नहीं करता, वह तो पत्थर के टुकड़े को देव समझकर पूजता है।

१८५. जिसने आत्मा का परमात्मा से संबंध नहीं किया, और न आवागमन मिटाया, उसे तूस के कूटते हुये बहुत काल बीत गया तो भी तंदुल का एक दाना भी हाथ में न आया।

१८६. देहरूपी देवालय में तू स्वयं शिव बस रहा है, और तू उसे अन्य देवल में ढूँढ़ता फिरता है। अरे, सिद्धप्रभु भिक्षा के लिये भ्रमण कर रहा है—यह देखकर मुझे हँसी आती है।

१८७. वन में, देवालयों में तथा तीर्थों में भ्रमण किया, आकाश में भी ढूँढ़ा, परंतु अरेरे! इस भ्रमण में भेड़िये और पशु जैसे लोगों से ही भेंट हुई... (-भगवान का तो कहीं दर्शन न हुआ!)

१८८. पुण्य तथा पाप दोनों के मार्ग को छोड़कर अलख के अंदर जाना होता है; उन दोनों का (पुण्य-पाप का) कुछ ऐसा फल नहीं मिलता कि जिससे लक्ष्य की प्राप्ति हो।

१८९. हे योगी! जोग की गति विषम है; मन रोका नहीं जाता, और इंद्रियविषयों के सुख में बलि-बलि जाता है, फिर-फिर इंद्रियविषयों में भ्रमण करता है।

१९०. हे योगी, आश्चर्य की बात देखो! यह चैतन्य-करम (हाथी का बच्चा अथवा ऊँट) की गति कैसी विपरीत-विचित्र है!—कि जब वह बंधा हो तब तो तीन भुवन में भ्रमण करता है, और जब छूटा (मुक्त) हो तब तो एक डग भी नहीं भरता। (जगत में सामान्यतः ऐसा होता है कि ऊँट वगैरह प्राणी जब मुक्त हो, तब चारों तरफ घूमते रहते हैं, और जब बंधे हुए हो तब घूम-फिर नहीं सकते। किंतु यहाँ आत्मा की गति ऐसी विचित्र है कि जब वह कर्मबंधन से मुक्त होता है, तब तो एक डग भी नहीं चलता—स्थिर ही रहता है, और जब बंधन में बँधा हो तब तो चारों गति में तीन लोक में घूमता रहता है।)

१९१. अरेरे, संसार में भ्रमण करते हुए जीव

को न संत दिखता है और न तत्त्व; और वह पर की रक्षा का भार अपने कंधे पर लेकर घूमता फिरता है। इंद्रिय तथा मनरूपी फौज को साथ लेकर पर की रक्षा के लिये भ्रमण करता है।

१९२. जो उजाड़ को तो बसाता है, और बसे हुए को उजाड़ करता है, जिसे न पुण्य है, न पाप—अहो, ऐसे योगी की बलिहारी है; मैं उनको बलि-बलि जाता हूँ—अर्पणता करता हूँ।

१९३. जो पुराने कर्मों को खपाता है, नये कर्मों को नहीं आने देता, और प्रतिदिन जिनदेव को ध्याता है, वह जीव परमात्मा बन जाता है।

१९४. और दूसरा, जो विषयों का सेवन करता है तथा बहुत पाप करता है, वह कर्म का सहारा लेकर नरक का पाहुना (मेहमान) बन जाता है।

१९५. जैसे कुत्ता चमड़े के टुकड़े में मुर्छित होकर हैरान होता है, वैसे मूढ़ लोग कुत्सित और क्षार-मूत्र की दुर्गंध से भरित शरीर में मूर्छित होकर संताप को पाता है।

१९६. हे मूर्ख! मल-मूत्र का धाम ऐसा यह मलिन शरीर, जिसके देखने से या जिसमें रमने से कहीं सुख तो नहीं होता, तो भी मूढ़ लोग कोई उसको छोड़ते नहीं।

१९७. हे जीव! तू जिनवर को ध्याव, और विषय-कषायों को छोड़। हे वत्स! ऐसा करने से दुःख तेरे को नहीं दिखेगा, और तू अजर-अमर पद को पावेगा।

१९८. हे वत्स! विषय-कषायों को छोड़कर मन को आत्मा में स्थिर कर; ऐसा करने से चार गति को चूर कर तू अतुल परमात्मपद को पावेगा।

१९९. रे मन! तू इंद्रियों के फैलाव को रोक और परमार्थ को जान। ज्ञानमय आत्मा को छोड़कर अन्य जो कोई शास्त्र है, वे तो वितंडावाद है।

२००. हे जीव! तू विषयों का चिंतन मत कर; विषयों भले नहीं होते। हे वत्स! सेवन करते समय तो वे विषय मधुर लगते हैं परंतु बाद में वे दुःख ही देते हैं।

२०१. जो जीव विषय-कषायों में रंजित होकर आत्मा में चित्त नहीं देता, वह दुष्कृत कर्मों को बाँधकर दीर्घ काल तक संसार में भ्रमण करता है।

२०२. हे वत्स! इंद्रियविषयों को छोड़; मोह का भी परित्याग कर; अनुदिन परमपद को ध्याव-तो तेरे को भी ऐसा व्यवसाय होगा, अर्थात् तू भी परमात्मा बन जायेगा।

२०३. निर्जितश्वास, निस्पंद लोचन और सकल व्यापार से मुक्त—ऐसी अवस्था की प्राप्ति वही योग है, इसमें संदेह नहीं।

२०४. जब मन का व्यापार टूट जाये, राग-रोग का भाव नष्ट हो जाये, और आत्मा परमपद में परिस्थित हो जाये, तभी निर्वाण होता है।

२०५. रे जीव! तू आत्मस्वभाव को छोड़कर विषयों का सेवन करता है, तो तेरा यह व्यवसाय ऐसा है कि तू दुर्गति में जायेगा। (अतः ऐसे दुर्व्यवसाय को छोड़।)

२०६. जिसमें न कोई मंत्र है, न तंत्र; न ध्येय है, न धारणा; श्वासोश्वास भी नहीं है; उनको किसी को कारण बनाये बिना ही जो परमसुख है, उसमें मुनि सोते हैं—लीन होते हैं; उसमें यह गड़बड़ या कोलाहल उनको नहीं रुचता।

२०७. विशेष उपवास करने से (परमात्मा में बसने से) अधिक संवर होता है। बहुत विस्तार क्यों पूछता है? अब किसी से मत पूछ।

२०८. हे जीव! जिनवर-भाषित सुप्रसिद्ध तप कर, दशविध धर्म कर; इस रीति से कर्म की निर्जरा कर।—यह स्पष्ट मार्ग मैंने तुझे बता दिया।

२०९. अहो जीव! जिनवरभाषित दशविध धर्म को तथा सारभूत अहिंसा-धर्म को तू एकाग्र मन से इसप्रकार भा, जिससे कि तेरा संसार टूट जाये।

२१०. भवभव में मेरा सम्यग्दर्शन निर्मल रहो, भवभव में मैं समाधि करूँ, भवभव में ऋषि-मुनि मेरा गुरु हो, और मन में उत्पन्न होनेवाले व्याधि का निग्रह हो।

२११. हे जीव! रामसिंह मुनि ऐसा कहते हैं कि तू बारह अनुप्रेक्षा को एकाग्र मन से इसप्रकार भा—कि जिससे शिवपुरी की प्राप्ति हो।

२१२. जो शून्य है, वह सर्वथा शून्य नहीं है; तीन भुवन से शून्य (खाली) होने से वह (आत्मा) शून्य दिखता है (परन्तु स्वभाव से तो वह पूर्ण है)।

ऐसे शून्य-सद्भाव में प्रविष्ट आत्मा पुण्य-पाप का परिहार करता है।

२१३. अरे अजान! दो पथ में गमन नहीं हो सकता, दो मुखवाली सूई से कथरी नहीं सीई जाती; वैसे इंद्रियसुख तथा मोक्षसुख—ये दोनों बात एकसाथ नहीं बनती।

२१४. उपवास से प्रतपन होने से देह संतप्त होता है, और उस संताप से इंद्रियों का घर दग्ध हो जाता है।—यही मोक्ष का कारण है।

२१५. अरे, उस घर का भोजन रहने दो कि जहाँ सिद्ध का अपवर्णन (अवर्णवाद) होता है। ऐसे (-सिद्ध का अवर्णवाद करनेवाले) जीवों के साथ जयकार करने से अर्थात् उनकी प्रशंसा करने से भी सम्यक्त्व मलिन होता है।

२१६. हे योगी! पृथ्वी पर भ्रमण करते हुए यदि माणिक मिल जाय तो वह अपने कपड़े में बाँध लेना और एकांत में बैठकर देखना। (संसारभ्रमण में सम्यक्त्वरत्न को पाकर एकांत में फिर-फिर उसकी स्वानुभूति करना; लोगों का संग मत करना।)

२१७. वादविवाद करनेवाले की भ्रांति नहीं मिटती; जो अपनी बड़ाई में तथा महापाप में रक्त है, वे भ्रांत होकर भ्रमण करते रहते हैं।

२१८. आहार है, सो काया की रक्षा के लिये है; काया ज्ञान के समीक्षण के लिये है; ज्ञान कर्म के विनाश के लिये है; तथा कर्म के नाश से परमपद की प्राप्ति होती है।

२१९. काल, पवन, सूर्य तथा चंद्र ये चारों का इकट्ठा वास है। हे जोगी! मैं तुझे पूछता हूँ कि इनमें से पहले किसका विनाश होगा?

२२०. चंद्र पोषण करता है, सूर्य प्रज्वलित करता है, पवन हिलोरें लेता है, और काल सात राजू के अंधकार को पेलकर कर्मों को खा जाता है।

२२१. मुख और नासिका के मध्य में जो सदा प्राणों का संचार करता है, और जा सदा आकाश में विचरता है, उसी से जीव जीता है। (अथवा, जो मुख तथा नासिका के बीच में प्राणवायु का संचार करता है तथा आकाश में सदा विचरण करता है, ऐसे प्राणवायु से संसारी जीव जीते हैं।)

२२२. जो आपदा से मूर्छित हुआ है, वह तो चुलुभर पानी के छिड़कने से भी जीवंत-जागृत हो जाता है; परंतु जो गत जीव है (मृत्यु को प्राप्त है) उसे तो पानी के हजारों घड़ों भी क्या कर सकते हैं ? (उसीप्रकार जिस जीव में मुमुक्षुता है, वह तो थोड़े से ही उपदेश से भी जागृत हो जाता है, परंतु जिसमें मुमुक्षुपना नहीं है, उसे तो हजारों शास्त्रों का भी उपदेश निरर्थक है।)

॥ इति प्राभृत-दोहा का अनुवाद समाप्त ॥

[श्री योगीन्दुदेव रचित, अथवा तो कवि रामसिंह रचित, अपभ्रंश-भाषा काव्य 'पाहुडदोहा' के २२२ दोहे का हिन्दी अनुवाद स्व. प्रोफेसर हीराललाजी जैन ने किया था; उस पर से, मूल दोहे को सामने रखकर संशोधन सहित यह नूतन अनुवाद पूज्य श्री कानजीस्वामी के मंगल सान्निध्य में अध्यात्मभावना सहित किया है। वीर संवत् २५०१ गुजराती आषाढ़ वद ७]

जैनं जयतु शासनम्।

—ब्र. हरिलाल जैन

अपूर्व शांति पाने के लिये आत्मा को पहिचानो

[लेखांक : ९]

बहिरात्मा तथा अन्तरात्मा के अभिप्राय में बहुत बड़ा तफावत होता है। अज्ञानी को बाह्य में ही आत्मबुद्धि होने से वह स्वर्ग के दिव्य शरीर की तथा विषयभोगों की ही वांछा करता है; और ज्ञानी तो शरीर तथा विषयों से पार ऐसे अपने चैतन्यसुख को जानकर उसमें ही स्थिर रहना चाहते हैं, उन्हें बाहर में कहीं भी अपना किंचित् सुख नहीं दिखता।

[समाधिशतक के प्रवचन में से]

जिसको राग में सुख की कल्पना है, उसको राग के फलरूप विषयों में भी सुख की कल्पना है, उसको आत्मा के सुखस्वभाव की प्रतीत नहीं है। जो शुभराग है, वह पुण्य-भोगसामग्री का हेतु है; उस राग को जो धर्म (या मोक्षसाधन) मानता है, वह जीव भोग के हेतुरूप धर्म का ही श्रद्धान करता है, किंतु मोक्ष के हेतुरूप वीतरागधर्म को वह नहीं जानता।

रागरहित ज्ञानचेतनामात्र जो परमार्थधर्म है, वह मोक्ष का हेतु है, उसे तो अज्ञानी पहचानता नहीं, अतः मोक्ष के कारणरूप सत्य धर्म की आराधना वह नहीं करता, परंतु स्वर्गादि-भोग के कारणरूप राग का ही सेवन करता है, अतः वह संसार में ही रुलता है।

धर्मात्मा तो राग में या राग के फलभूत विषयों में कहीं भी सुख नहीं मानते, वह राग से पार अपने चिदानंदस्वभाव को ही सुखरूप जानते हैं; चैतन्यस्वाद की मधुरता को जानकर वे राग से तथा विषयों से दूर रहना चाहते हैं। चैतन्यरस का स्वाद जिसने चख लिया, उसकी दशा कोई अलौकिक होती है।

स्वर्ग के दिव्य भोग वे भी पुद्गल की रचना है,—उनमें सुख कैसा? अरे, कहाँ चैतन्यसुख! और कहाँ अचेतन-पुद्गलरचना! दोनों में अत्यंत भिन्नता है।

एक ओर अतीन्द्रिय आत्मा का विषय, दूसरी ओर इन्द्रिय विषयों—इन दोनों की रुचि एकसाथ नहीं हो सकती। जहाँ एक की रुचि हो, वहाँ दूसरे की रुचि नहीं हो सकती। राग के फल में कभी अतीन्द्रिय आनंद नहीं मिलता किंतु इंद्रियविषयों ही मिलते हैं; अतः जिसको राग की रुचि है, उसको अतीन्द्रिय आत्मा की रुचि नहीं है।

कषाय की मन्दतापूर्वक शुभराग से व्रत-तप करके, उस राग में रंजित अज्ञानी ऐसा समझता है कि मैंने धर्म की बहुत उपासना की; पंचमहाव्रतसंबंधी शुभराग को वह मोक्षमार्ग समझ रहा है, परंतु राग से पार सच्चे मोक्षमार्ग को वह जानता भी नहीं; वह संसारमार्ग में ही चल रहा है।

और, कोई आत्मज्ञानी-धर्मात्मा गृहस्थपद में रहा हो, जिसके अंतर में विषयों से पार एवं राग से पार चैतन्यतत्त्व के आनंद का वेदन हो गया है,—उसे व्रत-तप न हो तो भी अंतर की अपूर्व भेदज्ञान-दृष्टि के बल से अनंत संसार का छेद हो चुका है, और वह मोक्ष का आराधक है।

अपूर्व अंतर्दृष्टि के ऐसे अचिंत्य महिमा को नहीं पहचाननेवाला अज्ञानी जीव भ्रम से ऐसा मानता है कि—इसको तो कोई व्रत-तप नहीं है, जबकि हम तो व्रत-तप करते हैं, अतः हम उससे बहुत आगे बढ़ चुके!—ऐसे जीव को यहाँ पूज्यपादस्वामी कहते हैं कि अरे अज्ञानी! तेरा व्रत-तप तो मिथ्यात्वसहित होने से संसार का ही कारण है; तुझे न चैतन्य की पहिचान है, और न तेरी विषयों की भावना (पुण्यफल में सुखबुद्धि) मिटी है, अतः तेरा संसार जरा भी कम नहीं हुआ; जबकि धर्मात्मा के तो अंतर में चैतन्यभावना के बल से अनंत संसार छूट गया है, विषयों में या पुण्यफल में कहीं उसे सुखबुद्धि नहीं है। इस कारण, व्रत-तप का शुभराग होते हुए भी अज्ञानी संसारमार्गी है-मोक्षमार्गी नहीं है, और धर्मात्मा के व्रत-तप न होते हुए भी वह मोक्षमार्गी है। फिर भी, हे अज्ञानी! तू ऐसे सम्यग्दृष्टि-मोक्षमार्गी को अपने से हल्का-नीचा मानकर, और अपने को उनसे ऊँचा समझकर मोक्षमार्ग की बड़ी विराधना कर रहा है। समंतभद्रस्वामी जैसे महान दिगम्बर संत रत्नकरण्डश्रावकाचार में यह बात अत्यंत स्पष्टता से फरमाते हैं कि निर्मोही-सम्यग्दृष्टि गृहस्थ तो मोक्षमार्ग में स्थित है, किंतु मोहवान-मिथ्यादृष्टि साधु भी मोक्षमार्गी नहीं है।

स्वतत्त्व तथा परतत्त्व ऐसे दो विभाग करके संक्षेप में समझाते हैं कि—स्वद्रव्य की सन्मुखता से मुक्ति होती है, और परद्रव्य में आत्मबुद्धि से बंधन होता है। परद्रव्याश्रित बंधन और स्वद्रव्याश्रित मुक्ति—यह जैनसिद्धांत का सार है।

सात तत्त्वों के श्रद्धान को सम्यग्दर्शन (तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्) कहा है। सात तत्त्वों में उपयोगस्वरूप जीव, वह स्वतत्त्व; उपयोगरहित अचेतन-अजीव, वह परतत्त्व; आस्रव-बंध ये अजीव के आश्रित होते होने से ये अजीव के साथ अभेद हुआ; और संवर-निर्जरा-मोक्षरूप पर्यायें शुद्ध जीवस्वभाव के आश्रित होने से वे जीव के साथ अभेद हुई। इसप्रकार शुद्धपर्याय सहित जीवतत्त्व वह स्वद्रव्य है और वही उपादेय है; अशुद्धता तथा अजीव ये परद्रव्य है और हेय है। ऐसे दो विभाग करके स्पष्ट भेदज्ञान कराया है। उसमें उपादेयरूप स्वतत्त्व में ही जो आत्मबुद्धि करता है, वह तो अजीव से-आस्रव से तथा बंध से च्युत होकर मुक्ति को पाता है; और जो हेयरूप परतत्त्व में (देह में, रागादि में) आत्मबुद्धि करता है, वह निजस्वरूप से च्युत होकर संसार में घूमता है। इसप्रकार बंध-मोक्ष के कारण को पहचानकर बंध के कारण को छोड़ना और मोक्ष के कारण का सेवन करना।

निजस्वरूप में एकत्व से जीव मुक्ति पाता है; और परपदार्थ में एकत्व से जीव बंधता है; अतः मुमुक्षु को स्व-पर की अत्यंत भिन्नता जानकर भेदज्ञान करना चाहिये।

सम्यग्दृष्टि जीव वस्तुस्वरूप का ज्ञाता है; देह से भिन्न अपना चैतन्यस्वरूप उसकी प्रतीति में आ गया है, वह अपने को चैतन्यस्वरूप अनुभवता है, मनुष्यादि देहपर्यायरूप वह अपने को नहीं मानता।

इस संसार में जीव को देह-स्त्री-धन बगेरे का संयोग अनंत बार आया और गया। इसप्रकार वे चीज़ अनंतबार उपभोग में आ चुकने से चैतन्य के लिये वे सब ऐंठन के समान हैं, ऐंठन को फिर से मुँह में कौन डालेगा?—उसमें सुख कौन मानेगा? इसप्रकार ज्ञानी को चैतन्य से बाह्य सारं संसार में कहीं सुख की कल्पना नहीं होती, अतः उसके लिये तो वे ऐंठन के समान ही है। तथा, जगत के पदार्थ जगत में हैं, किंतु जीव स्वयं जब अंतर्मुख होकर अपने आत्मा में झुका, तब स्वतत्त्व में जगत नहीं दिखता, इस अपेक्षा से जगत को स्वप्नसमान भी कहा।

अहा, ऐसे चैतन्यतत्त्व के अनुभव की धुन में जगत की अनुकूलता-प्रतिकूलता कहाँ देखना? चैतन्य की मस्ती में मस्त ज्ञानी जगत की अनुकूलता-प्रतिकूलता देखने में नहीं भटकते, अतः कैसे भी प्रसंग में चैतन्य की समाधि उन्हें रहा करती है। सम्यग्दर्शन में महान समाधि की ताकत है। सम्यग्दर्शन कभी, किसी भी प्रसंग में अपनी स्ववस्तु को नहीं भूलता, स्वविषय में उसे भ्रांति होती ही नहीं, अतः उसमें शांति तथा समाधि होती है; और चारित्रवंत जीवों की समाधि की तो क्या बात?

आत्मा ज्ञानस्वभाव है, उस ज्ञानस्वभाव की प्राप्ति (अर्थात् पूर्ण परिणमन) का नाम ही मुक्ति है; अतः मोक्षेच्छु जीव को ज्ञानस्वभाव की भावना करना चाहिये। देखो, यह मोक्ष के लिये भावना! ज्ञानस्वभाव की भावना कहो, आत्मभावना कहो या सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की आराधना कहो, वही मोक्ष का उपाय है। यहाँ अंतरात्मा को सावधान करते हुए पूज्यपादस्वामी कहते हैं कि—हे अंतरात्मा! देह से भिन्न चैतन्यतत्त्व को जानकर अपने अंतर में जो अपूर्व दशा तुमने प्रगट की है, उसमें भेदज्ञान की ऐसी दृढ़ भावना रखना कि पूर्व की भ्रांति का कोई संस्कार फिर जागृत न हो।

वीतरागी समाधि के लिये धर्मी जीव भेदज्ञान की दृढ़ भावना करता है कि—ये जो शरीरादि दृश्य पदार्थ हैं, वे अचेतन हैं; उन्हें कुछ ज्ञान नहीं है कि कौन हमारे ऊपर राग करता है, और कौन द्वेष करता है? तथा जो राग-द्वेषादि को जाननेवाला चेतनतत्त्व है, वह तो इंद्रियों से ग्राह्य नहीं होता-दिखता नहीं; तब फिर किसके ऊपर मैं राग-द्वेष करूँ? अतः बाह्य पदार्थों से उदासीन होकर मैं मध्यस्थ रहता हूँ। मेरे राग-द्वेष का कोई विषय ही नहीं; मैं ज्ञाता रहकर मध्यस्थ-उदासीन हूँ। पर से निरपेक्ष रहकर अतीन्द्रिय ज्ञान के द्वारा मैं मेरे स्वतत्त्व को ही विषय बनाता हूँ, वही मेरा ध्येय है; उसमें ही ज्ञान का उपयोग लगाकर मैं मध्यस्थ (राग-द्वेषरहित) बनता हूँ। यह मध्यस्थता ही समाधि है; ऐसी समाधि सम्यग्दृष्टि के ही होती है।

मैं ज्ञानमूर्ति ज्ञायक हूँ... जगत के पदार्थ सब अपने-अपने परिणमन प्रवाह में चल रहा है। जैसे नदी में पानी का प्रवाह तो चला ही जा रहा है; वहाँ कोई पागल जैसा किनारे खड़ा-खड़ा ऐसा माने कि 'यह मेरा पानी आया... और... अरे! यह मेरा पानी चला जाता है!'—तो वह व्याकुल ही होता है। अथवा ऐसा माने कि 'पानी के प्रवाह के साथ-साथ मैं भी बह रहा

हूँ'—तो वह भी दु:खी ही होगा; किंतु किनारे खड़ा-खड़ा मध्यस्थभाव से जो देखा ही करता है, उसे पानी के आने-जाने से कोई दु:ख नहीं होगा। उसीप्रकार जगत के पदार्थों का परिणमन-प्रवाह चल रहा है; मध्यस्थता से उनका ज्ञाता न रहकर अज्ञानी जीव ऐसा मानता है कि मैं इन पदार्थों को परिणमाता हूँ, अथवा ये पदार्थ मेरे हैं; वह जीव मोह से दु:खी होता है। एवं जो मध्यस्थ-वीतरागी ज्ञाता न रहकर उस परिणमन-प्रवाह में राग-द्वेष करके बह जाता है, उसे भी राग-द्वेष तथा असमाधि होती है। अपने चिदानंदस्वभाव में एकाग्र होकर, बाह्यपदार्थ के प्रति उदासीन रहने से राग-द्वेष नहीं होता, और वीतरागीसमाधिरूप आनंद की अनुभूति होती है; अत: धर्मात्मा को उसी का अवलंबन करना चाहिये।

शूरवीर

रे जीव! यदि तेरे में सच्ची शूरवीरता है तो किसी भी उपसर्ग के प्रसंग में धैर्यपूर्वक क्षमाभाव रखकर अपनी धर्म-साधना में दृढ़ रह। ऐसा शूरवीर बन कि थोड़े ही काल में बहुत काम हो जाये। शिथिल होगा तो तेरे आत्मकार्य को कब साधेगा?

आत्मिकशांतिरूपी अहिंसक तलवार लेकर कषायशत्रु को नष्ट कर दे और रत्नत्रय की रक्षा कर।

❀ प्रभो महावीर! मोक्षमार्ग दिखाकर आपने जो उपकार किया —उसे हम कभी नहीं भूलेंगे। ❀

साधक-शतक-माला

मोक्ष की साधक स्वानुभूति मंगल है; स्वानुभूति-सम्पन्न धर्मात्मा मंगल है; ऐसे धर्मात्मा के सम्मान का जो उत्सव मुमुक्षु लोग मनाते हैं, उसमें भी स्वानुभूति की ओर के झुकाव की प्रधानता रहती है। अहा, इस युग में हमें स्वानुभूतिवाले महात्मा का दर्शन होना—यह भी महान भाग्य है। उनकी स्वानुभूति को पहचानकर जो स्वयं अपने में भी ऐसी आराधना करे, उसका तो अपूर्व कल्याण हो जाता है। वह सज्जन अपने पर किये गये उपकार को कभी नहीं भूलता।

एक साधक महात्मा का सच्चा सम्मान करने के लिये, उनकी आत्म-साधना को एवं उनमें विद्यमान चैतन्यरूप साधकभाव को पहचानना आवश्यक है; साधक जीव के ऐसे चैतन्यभाव का वर्णन उनकी अत्यंत महिमा के साथ, यहाँ १०८ पुष्पों की 'मंगलमाला' के द्वारा किया गया है। इसके द्वारा ज्ञानी की अचिंत्य महिमावंत परिणति को जो पहचानेगा, उसका कल्याण होगा ही होगा। [इस लेखमाला के ६२ पुष्प गतांक में आपने पढ़े; शेष यहाँ दिये जाते हैं।] — ब्रह्मचारी हरिलाल जैन

६३. भेदज्ञानी-धर्मात्मा का धारावाही ज्ञान कैसा होता है! उसका अचिंत्य महिमावंत स्वरूप समझाकर, ऐसा ज्ञान प्रगट करने के लिये मुमुक्षु को कैसा प्रयत्न करना, यह आचार्यदेव ने दिखाया है।

६४. धर्मी जीव प्रज्ञाछैनी के द्वारा ज्ञान और राग की अत्यंत भिन्नता का भेदज्ञान करके अपने को एक ज्ञानमय भावरूप ही अनुभव में लेता है; ज्ञान के वेदन में कर्म का या राग का प्रवेश जरा भी नहीं है।

६५. ज्ञानी का जो भाव चिदानंदस्वभाव में तन्मय हो करके परिणमित हुआ, वह भाव ज्ञानमय ही है, उसमें राग-द्वेष-मोह नहीं है। स्वभाव के परिणमन की धारा में विभाव कैसे हो?—वाह रे वाह! साधक की ज्ञानधारा!—वह बहुत गंभीर है।

६६. उपयोग तभी अंतर्मुख हुआ, जब कि राग से अलग हुआ; उपयोग ने अंतर्मुख हो करके

राग से एकत्व तोड़ा सो तोड़ा, अब फिर कभी एकत्व होनेवाला नहीं—चाहे उपयोग पर को भी जाने तो भी उसमें एकत्व नहीं होगा।

६७. जैसे आकाश से बिजली गिरे और पर्वत चूर-चूर हो जाय, वह फिर से नहीं जुड़ता; वैसे अनुभूति के गगन से भेदज्ञानरूपी बिजली के गिरने से ज्ञानी के ज्ञान और राग की एकता टूट गई, वह फिर से कभी नहीं संधेगी।

६८. अहा, अंतर के अपूर्व पुरुषार्थ से भेदज्ञान करके जिसने अपने अंतर में ही परमात्मा से भेंट की, वह अब पामर जैसे परभावों से संबंध क्यों रखेगा? राग से जुदी जो ज्ञानधारा उल्लसित हुई, वह अब परमात्मपद को प्राप्त करेगी ही।

६९. देखो तो सही, यह स्वभाव के साधक का जोर! पंचम काल में भी मुनिराज ने क्षायिक जैसे अप्रतिहत धारावाही भेदज्ञान की आराधना दिखलाई है। अंतर में आत्मा की वीरतापूर्वक ऐसे ज्ञान का स्वीकार करना चाहिये।

७०. जो अपने ज्ञान की उग्र धारा के द्वारा मोह को नष्ट करने के लिये उद्यत हुआ, उसका परिणाम ढीले नहीं होते; उसे अपने पुरुषार्थ में संदेह नहीं रहता; वीर-हाक से जो मोक्ष के साधने को तत्पर हुआ, उसकी ज्ञानधारा बीच में कहीं टूटेगी नहीं।

७१. परिणति जब अंतर्मुख होकर चैतन्यरूप हुई, तब वह राग से पृथक् हुई; अब उसमें निरंतर राग से जुदा अबंध-परिणमन ही रहा करेगा।

७२. अरे, ऐसी चैतन्य अनुभूति की कितनी महिमा है, और ऐसा अनुभव करनेवाले धर्मात्मा की कैसी स्थिति है?—लोगों को उसकी पहचान दुर्लभ है। धर्मात्मा ने अपने आँगन में मोक्ष के मण्डप का आरोपण किया है।

७३. अनुभवी जीव के अनुभव में सभी शास्त्रों का सार आ जाता है; चैतन्यरत्न-जो कि बारह अंगरूप श्रुतसमुद्र का श्रेष्ठ रत्न है—उसको उसने प्राप्त कर लिया है; और संसार को मूल से छेद दिया है।

७४. पूर्णानंद से भरपूर ज्ञानधाम की ओर ज्ञानधारा का जो प्रवाह बहने लगा, उसे रोकनेवाला कोई नहीं। ज्ञानधाम में से प्रवाहित चैतन्यरस के झरने में रागादि का अभाव है।

७५. अविरति सम्यग्दृष्टि के अंतर में भी भेदज्ञान के बल से क्षणप्रतिक्षण सिद्धपद की आराधना चल रही है। जैसे मुनिराज मोक्ष के साधक हैं, वैसे ही यह धर्मात्मा भी मोक्ष का साधक है।

७६. अरे जीव! यदि एक बार भी तू भेदज्ञान के द्वारा तेरे ज्ञान को राग से जुदा अनुभव में ले, तो राग के साथ ज्ञान की एकता स्वप्न में भी तेरे को नहीं दिखेगी।

७७. भेदज्ञान होने पर भान हुआ कि मेरा ज्ञान राग से तद्रूप कभी था ही नहीं और आगे कभी तद्रूप होगा भी नहीं; मैं जुदा ही जुदा, ज्ञायक ही ज्ञायक हूँ।

७८. प्रसिद्ध हो कि ज्ञानी की ज्ञानधारा मुक्तरूप ही है; सम्यग्दृष्टि मुक्त है; मिथ्यात्व ही संसार है। सम्यग्दर्शन हुआ कि मुक्ति ही है। चेतना में संसार नहीं है।

७९. जीव के परिणामों को यदि बंध और मोक्ष ऐसे दो भागों में बाँटा जाए तो, सम्यक्त्वपरिणाम मोक्षस्वरूप ही है, उसमें बंधन जरा भी नहीं है; और रागादि बंधभावों में मोक्ष का कारण जरा भी नहीं है।

८०. अरे जीव! एकबार तो ज्ञान के आश्रय पर खड़ा हो जा! भेदज्ञानरूपी वज्र से एकबार तो ज्ञान और राग के बीच की संधि को तोड़ दे! तेरे को बहुत मजा आयेगा।

८१. ज्ञानी की ज्ञानधारा का प्रवाह स्वोन्मुख बहने लगा है; वह ज्ञानधारा मिथ्यात्वादि मेल को साफ करती हुई आगे बढ़कर केवलज्ञान समुद्र से मिल जायेगी।

८२. आगम से युक्ति से एवं स्वानुभव के प्रमाण से चैतन्यतत्त्व की रागादि से भिन्नता दिखाकर आचार्यदेव ने भव्यजीवों को भेदज्ञान की प्रेरणा दी है।

८३. हे भव्य! हे आत्मशोधक! अंतर में यह ज्ञानस्वरूप आत्मा का अनुभव करने के लिये, अन्य सब कोलाहल छोड़के, आत्मा के रस से सतत छह मास तक प्रयत्न कर!—तेरे को जरूर आत्मा मिलेगा।

८४. निश्चल होकर आत्मलगनी से अंतरंग में भेदज्ञान का गहरा अभ्यास कर; ऐसा करने से अपने ही अंतरंग में देहादि से भिन्न अत्यंत मनोहर चैतन्यतत्त्व तेरे अनुभव में आयेगा।

८५. अरे जीव! सच्चे भाव से आत्मा की लगन में लगा रह और उसमें भंग न होने दे तो छह

मास से भी कम समय में तुझे निर्मल अनुभूति (सम्यक्दर्शन) अवश्य होगी। बहुत जीवों को हुआ है, ऐसा तेरे को भी होगा।

८७. 'अरे, मेरा चैतन्यतत्त्व क्या है?'—अन्तर में ऐसा कुतूहल (तीव्र जिज्ञासा) करके, और इसके सिवाय अन्य सारे संसार की चिंता छोड़कर हे जीव! तू अनुभव का उद्यम कर।

८८. आत्मार्थी के परिणाम में चैतन्य का ऐसा तीव्र रस है कि आत्मा के अनुभव के अभ्यास की धारा को वह तोड़ता नहीं—चाहे जैसी परिस्थिति उपस्थित हो तो भी!

८९. जगत की, परिवार की या शरीर की भी चिंता की झंझट छोड़कर, चैतन्यसाधना में जो कटिबद्ध हुआ, शूरवीर होकर जो आत्मा के साधने को चला, वह अवश्य आत्मा को साधेगा ही।

९०. अरे जीव! चैतन्य को साधने के लिये तुम उसके महिमा का धोलन करो; बहिर्मुख चिंता को छोड़कर अंतर्मुख होने का सतत प्रयत्न करो; तुम्हें आनंद के विलाससहित अत्यंत सुंदर चैतन्यतत्त्व का स्वानुभव होगा।

९१. अहा, देखो तो सही! आचार्यदेव ने कैसा सरस समझाया है! आत्मा के अनुभव की कितनी अच्छी प्रेरणा दी है! भाई! अब तो तुम्हारे उपयोग को चैतन्यचिंतन में लगाओ।

९२. हे जीव! तू बाहर की चिंता करेगा तो भी उसका तो जो होनेवाला है, वह होगा ही; और तू उसकी चिन्ता छोड़ दे तो भी उसका जो होनेवाला है, वह अटकनेवाला नहीं। अतः पर की व्यर्थ चिंता को छोड़कर अपने उपयोग को चैतन्यचिंतन में लगा।

९३. बाहर के प्रयास अनंत काल से करते हुए भी तेरे हाथ में कुछ नहीं आया, आकुलता ही बनी रही, फिर भी उसी में क्यों लगा रहता है? स्वोन्मुख क्यों नहीं आता? यह तेरी समुद्र जितनी बड़ी मूर्खता है।

९४. अंतर में चैतन्य प्राप्ति का प्रयत्न करने से अंतर्मुहूर्त में उसकी प्राप्ति होती है और सादि-अनंतकाल तक सुख का वेदन होता है। आनंद की प्राप्ति का उपाय तो यही है कि स्वोन्मुख होना।

९५. जीव में अंचित्य ताकत है; जब वह अंतर्मुख होकर अपनी ताकत को प्रयोग में लाता है, तब उसे सम्यग्दर्शनादि होता है, उसमें अन्य कोई कारण नहीं है; वह अन्य कारकों से निरपेक्ष है; अथवा, आत्मा स्वयं मुमुक्षु होकर अपनी शांति के लिये जागृत हुआ—यही उसका कारण।

९६. श्री आचार्यदेव एवं ज्ञानीसंतों बारबार मधुरता से कहते हैं कि हे भव्य! अन्य समस्त चिंताओं को छोड़कर एक चिदानंदतत्त्व की प्राप्ति के प्रयत्न में ही अपने उपयोग को लगाओ।—यही सबसे सुंदर काम है।

९७. प्रवचनसार के अंत में कहते हैं कि अहो जीवो! यह ज्ञानानंदस्वरूप परमतत्त्व को आज ही तुम देखो! आज ही आत्मा का अनुभव करो; अभी इसके लिये उत्तम अवसर है।

९८. ज्ञान-आनंदमय भेदज्ञानज्योति सदा विजयवंत है, वह सादि-अनंत जयवंत है। भेदज्ञान जिसने प्रगट किया, उसने आत्मा में विजय का धर्मध्वज फहराया।

९९. अंतर में आत्मार्थिता जागृत हुए बिना चैतन्य का पता नहीं लगता। भाई, चैतन्य चीज़ कोई अचिंत्य है। तेरी चैतन्यसत्ता राग से रंजित नहीं हुई, जुदी ही है।

१००. अहो, ऐसा भेदज्ञान अच्छिन्न धारा से निरंतर भाने योग्य है। हे सत्पुरुषों! ऐसा भेदज्ञान करके तुम मुदित होओ! राग से अत्यंत भिन्न चैतन्य को अनुभव में लेकर आनंदित होओ।

१०१. जिसने भेदज्ञान किया, वह 'संत' है; चैतन्य के अनुभव में संतों को अतीन्द्रिय आनंद का अनुभव हुआ है; उनकी अनुभूति विकल्पों से पार है।

१०२. भेदज्ञान से शुद्धात्म-अनुभूति हुई, वह अपूर्व मंगल है; और जिसके ऐसी दशा प्रगट हुई, वह संत भी मंगलरूप है, तथा वे अन्य जीवों के भी मंगल का कारण है।

१०३. दुनिया की चाहे जैसी प्रतिकूलता हो, बिजली गिरे या वज्रपात हो तो भी ज्ञानी को अपने ज्ञानस्वभाव में कभी संदेह नहीं होता। ज्ञानी को ज्ञानमय परिणमन से च्युत करने को कोई समर्थ नहीं।

१०४. सीताजी, राजीमती, चंदना, सुदर्शन या सुकुमार वगैरह अनेक धर्मात्माओं के ऊपर

चाहे जैसे प्रसंग आये तो भी वे अपने स्वभाव में नि:शंक रहकर ज्ञानरूप ही वर्तते थे; अचिंत्य ज्ञानधारा का प्रवाह उनके अंतर में चल ही रहा था।

१०५. कोई कहे कि-हम कहाँ तक सहन करें ?—तो... कहते हैं कि अरे भाई! सारे संसार से भिन्न रहने की तेरे ज्ञानस्वभाव की ताकत है, तेरा ज्ञान उदार है, धीर है; ज्ञान की अच्छिन्नधारा को कोई तोड़ नहीं सकता।

१०६. चैतन्य की ज्ञानदशा प्रगट करने के लिये जीव में बहुत पात्रता तथा बहुत प्रयत्न होना चाहिये। अहा, कितनी तैयारी! कितनी लगन! कितनी जागृति! और उसका फल भी कैसा मधुर-मधुर है!!

१०७. अहो, ज्ञानी का ज्ञान आनंदरूप वर्तता हुआ, रागादि से जुदा ही रहता है। उसे भेदज्ञान घोखना नहीं पड़ता, अपितु उसकी परिणति ही ज्ञानभावरूप हो गई है।

१०८. ज्ञानी की परिणति अचिंत्य महिमावंत है, उसके आत्मा में साधकभाव की मंगल माला का गुंथन हुआ ही करता है। ऐसे साधक संतों को नमस्कार हो।

रत्नत्रय के बाग में रमते साधक संत। गुंथते साधक-माल को भव का आया अंत॥
साधक संत की परिणति अद्भुत आनंदकार। पहचाने जो भाव से पावे भव का पार॥
साधक मंगलमाल में जिनप्रवचन का सार। जो गुंथे निजआत्मा में होवे जयजयकार॥

पर्यूषणपर्व संबंधी

विविध-समाचार

अशोकनगर (जिला गुना) में दशलक्षण पर्व बड़े ही हर्षोल्लास के साथ मनाये गये। इस वर्ष यहाँ सोनगढ़ से आध्यात्मिक प्रकाण्ड प्रवक्ता श्रीमान् पंडित बाबूभाई चुन्नीलालजी मेहता फतेहपुरवाले पधारे, जिनके आने से जैन धर्म की बड़ी प्रभावना एवं जिनवाणी का प्रचार व प्रसार हुआ; आपके पधारने से यहाँ आस-पास के गाँवों से हजारों की तादात में जैन धर्मबंधु पधारे, आपके प्रवचनों से हजारों जैन-अजैन सभी धर्मप्रेमी बंधुओं ने पधारकर धर्मलाभ लिया। दिनांक ११-९-७५ कुआर वदी १, इतवार को बड़े ही हर्षोल्लास के साथ मुख्य-मुख्य बाजारों से विमानजी निकाले। धर्मप्रेमी-बंधुओं ने सपरिवार पधार कर धर्मलाभ लिया।

ऐत्मादपुर (आगरा, उ.प्र.)—यहाँ की जैन समाज के निवेदन पर दशलक्षण पर्व में 'आध्यात्मिक विद्वान श्री शांतीकुमारजी जैन, मौ (भिंड) निवासी को भेजा गया है। इस वर्ष आपके पधारने से पर्व विशेष उल्लासपूर्वक यहाँ मनाया गया। प्रतिदिन आपके द्वारा चार बार कार्यक्रम (शास्त्रसभा, शिक्षण इत्यादि) होते थे। जैन बंधुओं ने पर्याप्त आत्मलाभ लिया। वस्तु के यथार्थ स्वरूप को समझने का प्रयत्न किया है। हम पूज्य सत्पुरुष श्री कानजीस्वामी तथा ट्रस्ट के विशेष आभारी हैं कि वे निस्वार्थ भावना से ऐसे विद्वानों को भेजकर जगह-जगह अध्यात्मगंगा प्रवाहित करते हैं, जिसमें मुमुमुबंधु स्नान कर शांति प्राप्त करते हैं। आशा है भविष्य में हमारे यहाँ इसीप्रकार विद्वानों को भेजते रहेंगे। **—रामस्वरूप जैन**

इटावा (उ.प्र.)—शिक्षण-शिविर सोनगढ़ से वापिस आकर श्रीमान् पंडित ज्ञानचंदजी विदिशावाले, जसवंतनगर होते हुए इटावा पधारे। आपका छहढाला पर आध्यात्मिक, भावपूर्ण एवं रोचक प्रवचन लगातार चार दिन हुआ। इटावा समाज ने पंडितजी के हृदयाग्रही प्रवचन का पूरा-पूरा लाभ उठाया। तदुपरांत पंडितजी पर्यूषण-पर्व हेतु फिरोजाबाद चले गए।

श्री पंडित मोतीलालजी आरोनवाले पर्यूषण पर्व पर करहल जाते समय इटावा पधारे, आपके आध्यात्मिक एवं भावपूर्ण प्रवचन से यहाँ के जैन समूह ने पूरा-पूरा लाभ उठाया।

पर्यूषण पर्व हेतु श्री पंडित रमेशचंदजी मलकापुरवाले इटावा पधारे हुए हैं। पंडितजी का प्रातः मोक्षमार्गप्रकाशक पर अति भावपूर्ण रोचक प्रवचन चलता है, मध्याह्न तत्त्वार्थसूत्र पर प्रवचन चलता है, एवं रात्रि में दशधर्म एवं छहढाला पर प्रवचन चलता है। पंडितजी के अध्यात्मपूर्ण, नई शैली के विवेचन से यहाँ सभी साधर्मी धर्म के स्वरूप का पूरा-पूरा लाभ ले रहे हैं।

यहाँ की समाज पूज्य कानजीस्वामी के प्रति अति आभार प्रदर्शित करती है। आज उनकी कृपा से नई शैली द्वारा धर्म के स्वरूप का पूरा-पूरा लाभ उठा रहे हैं। **—चंद्रप्रकाश जैन, इटावा**

करहल (मैनपुरी)—समाज के आग्रह पर आपके यहाँ के विद्वान पंडित मोतीलालजी जैन कौशल, आरौन (म.प्र.) निवासी पर्वराज पर्यूषण पर हमारे यहाँ पधारे। निरंतर ११ दिन उनके प्रवचन हमारे यहाँ हुए जिनसे बड़ा लाभ मिला।

प्रतिदिन चार घंटे सभी जैन और अजैन जनता पंडितजी से लाभ प्राप्त करती रही। हम सभी स्त्री-पुरुष अबाल, वृद्ध परम पूज्य स्वामीजी का तथा आप सबका आभार मानते हैं और कृतज्ञता प्रगट करते हैं; साथ ही अनुरोध करते हैं कि भविष्य में भी समय-समय पर आपकी इसी प्रकार कृपा मिलती रहेगी। धन्यवाद, सहित, **— वीरेन्द्रकुमार जैन कुमुद, मंत्री**

कुराबड (राज.)—हम सभी मुमुक्षु भाईयों की प्रार्थना पर दशलक्षणपर्व पर संस्था द्वारा पंडित श्री सुजानमलजी मोदी साहब को भेजे जाने से जैन व अजैन सभी साधर्मी बंधुओं ने धर्म के वास्तविक स्वरूप को सुना व सच्चा निर्णय किया व प्रवचन से प्रभावित होकर समस्त गाँव निवासियों के मुमुक्षु भाईयों व बहिनों ने स्वाध्याय व जिनेन्द्र पूजन में प्रतिदिन भाग लेने का व स्वाध्याय करने का निश्चय किया। आत्मज्ञ मोदी साहेब का प्रवचन आत्मस्पर्श करता हुआ भव्यजीवों का कल्याण कराने में निमित्त है। यह सब पूज्य संतपुरुष कानजीस्वामी की देन है, जिससे भारत व विदेशों में धर्म का परम आचार्य परंपरा अनुसार स्वरूप दर्शाया है। जिससे स्वामीजी के प्रताप से पंचम काल नहीं होकर साक्षात् तीर्थंकर का समवसरण युत चौथा काल ही वर्त रहा है।

पूज्य मोदी सा. प्रातः ५ बजे से रात्रि ७ बजे तक प्रवचन, तत्त्वचर्चा, भक्ति आदि विशेष कार्यक्रमों के रहने से काफी लाभ मिला। मोदी सा. के साथ में आमंत्रित श्री छगनलालजी

लोहारदावालों के पधारने से तत्त्वचर्चा व स्वाध्याय में काफी गंभीर बातों का प्रश्नोत्तर द्वारा शंका-समाधान हुआ। वीतराग विज्ञान पाठशाला को भी आपने मार्गदर्शन दिया। आप पुरुषार्थी भव्यजीव व धर्म का स्वरूप जानने के जिज्ञासु हैं। मोदी सा. व छगनलालजी के भेजे जाने से हम पूज्य स्वामीजी के व संस्था के आभारी हैं।

पूज्य आत्मज्ञ संत श्री कानजीस्वामीजी के चरणों में हम सभी मुमुक्षु-भाई-बहिनों का शत-शत वंदन होंवे। **महावीरलाल जैन—मुमुक्षु मंडल, कुरावड**

कूण—हमारे यहाँ पर्यूषण पर्व में प्रवचन हेतु पंडित श्री जतीशभाईजी को भेजने का संस्था ने कष्ट किया। अत: हमारे प्रति महान उपकार है, हम इसके लिये पूर्ण आभारी हैं। पूज्य एवं भद्रेय स्वामीजी का तो दिगम्बर जैन समाज पर महान उपकार है ही। मगर संस्था ने जगह-जगह पंडितजी भेजने की जो व्यवस्था वर्तमान में बना रखी है, वह भी महान उपकार ही है। आज जैसे युग में राग-द्वेष की भट्ठी में जलते हुए जीवों को तत्त्वज्ञान का अति सुंदर अवसर मिला; सोनगढ़ केंद्र ही ऐसी संस्था है जिसके द्वारा सारे भारतवर्ष में धर्मप्रचार का स्रोत बह रहा है। हमारे यहाँ पंडित जतीशभाई पधारे, उनका प्रवचन सुबह समयसार की गाथा ७३ पर व दोपहर को बालबोध पाठमाला का शिक्षण व शाम का दशधर्म पर व मोक्षमार्गप्रकाशक पर अति सुंदर शैली से समझाते थे यहाँ के भाईयों ने ऐसी सुगम शैली से अत्यंत आनंद माना व पंडितजी के साथ सोनगढ़ की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

खनियाधाना (म.प्र.)—समाज के आमंत्रण पर सोनगढ़ कमेटी की ओर से मनोनीत पंडित श्री ताराचंदजी सर्राफ सागरवालों का शुभागमन हुआ। जिनके सत् उपदेशों द्वारा पर्वराज पर्यूषण पर्व पर स्थानीय जैन एवं जैनेतर समाज ने वस्तुस्वरूप समझने का प्रयास किया तथा उपदेशों में सदाचार पर भी वजन देते हुए मर्म की बात जो शुद्धात्मतत्त्व संबंधी है, अपने उपदेशों में समझाने का प्रयत्न किया। पंडितजी साहब का अध्ययन चारों अनुयोगों संबंधी है। उपदेशों में भी वही पद्धति अपनाते हैं। यह जो कुछ भी धर्म की प्रभावना विशाल पैमान पर हो रही है, वह पूज्य गुरुदेव का प्रसाद ही है। **—कोमलचंद जैन**

ग्वालियर (म.प्र.) में दशलक्षण पर्व दिनांक १०-९-७५ से १९-९-७५ तक हर्षोल्लास के साथ संपन्न हुए। गत वर्षों की भाँति इस वर्ष भी सोनगढ़ से भेजे हुए श्रीमान्

पंडित मिसरीलालजी जैन चौधरी गुनावाले यहाँ पधारे, जिनके प्रवचन बड़ा मंदिर सर्राफा, माधोगंज, दौलतगंज, नया बाजार, दानाओली, मामा का बाजार के मंदिरों में हुये। आपके प्रवचनों से यहाँ की जैन समाज ने अपूर्व धर्मलाभ लिया। इन्हीं के सान्निध्य में क्षमावाणी पर्व सानंद सामूहिक रूप से मनाया गया। आपके पधारने से धर्म की प्रभावना विशेष हुई और आपके प्रवचनों से हजारों की संख्या में जैन बंधुओं ने धर्मलाभ लिया।

श्रीमान पंडित शुभचंदजी विदिशावाले तथा स्थानीय विद्वान श्रीमान् पंडित भगवती शास्त्री, कपूरचंदजी पाटनी, विमलचंदजी पाटनी, कपूरचंद वरैया, रिषभकुमारजी वकील ग्वालियर, चंपालालजी, सुभाषचंदजी आदि के भी प्रवचन हुए।

चंदेरी (गुना-म.प्र.) में परम पावन पर्यूषणपर्व आनंद से मनाया गया। इस अवसर पर श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट सोनगढ़ से भेजे गये विद्वान पंडित रामकिशोरजी जैन कोटावाले पधारे। जिनके सरस ओजस्वी एवं आध्यात्मिक प्रवचन का धर्मलाभ समाज को प्राप्त हुआ। साथ ही आध्यात्मप्रेमी बंधुओं श्री गोटीलालजी पिपरई से यहाँ पधारे, उनके भी प्रवचन हुए। श्री चौधरीजी एवं पंडितजी की सतत प्रेरणा से समाज ने जैन पाठशाला को पुनः नियमितरूप से प्रारंभ करने का संकल्प किया एवं श्री वर्द्धमान स्वाध्याय मंडल का भी गठन किया गया।

जवेरा (म.प्र.)—पर्यूषण पर्व के उपलक्ष में इस वर्ष जवेरा (दमोह) में सोनगढ़ से भेजे गये बेगमगंज निवासी विद्वान पंडित कस्तूरचंदजी पधारे; उन्होंने बारह दिन तक प्रतिदिन चार बार श्री मोक्षमार्गप्रकाशकजी, श्री तत्त्वार्थसूत्रजी, छहढाला एवं दश धर्मों पर अपने विद्वतापूर्ण प्रवचन किये। पंडितजी प्रतिदिन ५ घंटे प्रवचन करते थे, उनकी शैली अत्यंत सरस तथा उदाहरण युक्त होने से सभी ने उसका लाभ लिया। समाज द्वारा आभार प्रदर्शन का उत्तर देते हुए विद्वान वक्ता ने संपूर्ण श्रेय सोनगढ़ संस्था तथा परम पूज्य गुरुदेवश्री का ही स्वीकार किया। समाज में अभूतपूर्व धार्मिकचेतना जागृत हुई। **—हुकमचंद जैन**

दुली (फिरोजाबाद)—दशलक्षण पर्व के १० दिनों में आदरणीय पंडित ज्ञानचंदजी विदिशावालों ने जो तत्त्व का सच्चा स्वरूप बताया है। जिससे हम लोगों को जो तत्त्वज्ञान हुआ है। उसकी महिमा तो अपरंपार है। आत्मा का एक-एक कण इतना निर्मल हो गया है कि

आपको लिखना तो सूरज को दीपक दिखाने के समान है। ज्यादा आपको क्या लिखें।

पूज्य स्वामीजी के दर्शन की तो तीव्र इच्छा है। लेकिन पूर्व कर्म का अशुभोदय है। जिसके कारण दर्शन नहीं हो पाते होंगे, अवश्य होंगे—समय की देर है। **—अज्ञानी, वीरेन्द्र जैन**

फिरोजाबाद—चंद्रप्रभु के मंदिर में दशलक्षण पर्व बड़े आनंद के साथ मनाये गये। इस वर्ष की विशेषता यह थी कि सोनगढ़ से श्रीमान् पंडित ज्ञानचंदजी विदिशावालों के आने से धर्म की प्रभावना अधिक हुई आपके प्रवचन से हजारों की संख्या में जनता ने आकर धर्मलाभ लिया। क्षमावाणी पर्व आपके सानिध्य में सानंद संपन्न हुआ। एवं अभिनंदन पत्र दिया गया। आत्मधर्म के ग्राहक बने।

महिदपुर (डाक से) प्रचार विभाग सोनगढ़ के आदेश पर पर्वाधिराज पर्यूषण पर्व में करेली के पंडितजी श्री पन्नालालजी पधारे। आपने भादरवा सुदी ५ से कुंवार वदी १ क्षमावाणी तक १२ दिन तक पर्व में सुबह, दोपहर, रात्रि को शास्त्र सभा भजन-पूजन आदि प्रोग्राम रखे। आपने अपने प्रवचन में सूक्ष्म से सूक्ष्म तत्त्वचर्चा द्रव्य-गुण-पर्याय-पुण्य-पाप और इनसे रहित अवस्था पर काफी सारगर्भित प्रकाश डाला। आपके उपदेश में जैन-अजैन सभी वर्ग के लोग पधारते और आजतक न सुनी हुई आध्यात्म के विषय की चर्चा सुनकर आत्मविभोर हो जाते; पर्यूषण में काफी धर्मप्रभावना रही, आपने उपरोक्त विषय के अतिरिक्त रूढीवाद तथा बालक-बालिकाओं की आधुनिक वेशभूषा पर काफी फटकारा और उन्हें सदाचार बाह्य आचार-विचार, रहन-सहन कैसा होना चाहिये इसका उपदेश दिया। महिलाओं को भी आपने जागृति का संदेश प्रदान कर महिला मंडल कायम कर समिति आदि का गठन कराया। पूरा पर्व आत्मिक आनंद हर्ष-उल्लासपूर्ण धार्मिक कार्यों के सहित पूर्ण हुआ इसके लिये यहाँ के स्थानीय समाज एवं मुमुक्षु मंडल प्रचार विभाग सोनगढ़ एवं पंडित श्री पन्नालालजी सा. करेलीवालों का सदैव आभारी रहेगा। **—कल्याणमल बड़जात्या, महिदपुर**

मद्रास—हमारी प्रार्थना स्वीकार करके प्रचार कमेटी ने श्री पंडित चिमनभाई कामदार को हमारे यहाँ पर्यूषण पर्व में व्याख्यान देने हेतु भेजा, जिससे अच्छी धर्मप्रभावना हो रही है। यहाँ के मुमुक्षु मंडल ने सवेरे तथा शाम को उनके प्रवचनों का कार्यक्रम रखा है, सो अब तक चल रहा है। शाम का प्रवचन श्री जैन भुवन में रखा गया है; जिसका अनेक जैन भाई-बहनों ने

तथा जैनेतर जनता ने भी लाभ लिया और ले रहे हैं। पूजन आदि कार्यक्रम भी बड़े उत्साहपूर्वक होते हैं।

श्री पंडित चिमनभाई की प्रवचन शैली से यहाँ के लोग खूब प्रभावित एवं प्रसन्न होते हैं। सवेरे क्रमशः दस धर्मों पर परमात्मप्रकाश पर प्रवचन, शाम को प्रतिक्रमण के पश्चात् श्री जैन सिद्धांत प्रवेशिका आदि की पढ़ाई होती थी। मंडल के भाई-बहिन प्रत्येक कार्य में उत्साहपूर्वक भाग लेते थे। यहाँ बननेवाले नूतन जिनमंदिर का कार्य आगे बढ़ाने का भी विचार हो रहा है और सर्व मुमुक्षुओं की भावना शीघ्र ही मंदिर का निर्माण कराने की है।

— शांतिलाल छगनलाल शाह
प्रमुख
श्री दि. जैन मुमुक्षु मंडल, मद्रास

रतलाम (म.प्र.) आपके निर्णयानुसार पर्यूषण पर्व पर श्रीमान् चंदुभाई मेहता फतेपुर से भा.सु. ४ को दोपहर में पधारे।

श्री चंदुभाई प्रातः ८.०० से १०.००, दोपहर २.०० से ३.००, रात्रि ८.०० से ९.०० तक समयसार, मोक्षशास्त्र, दशधर्म व मोक्षमार्गप्रकाशक पर प्रवचन करते हैं व दोपहर व रात्रि में लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका पर कक्षायें चलाते हैं; आपके समझाने की शैली व सातत्त्व जीव-अजीव, पाप-पुण्य आदि को सरल व सिद्धांतरूप से ऐसे समझाते हैं कि सब ही को, सुगमता से रुचिपूर्वक बैठता है। हम बहुत-बहुत आपकी कमेटी के आभारी हैं कि जो ऐसे विद्वान को हमारे यहाँ भेजकर अपूर्व ज्ञानामृत की वर्षा का सच्चा अनुभव कर रहे हैं।

—मोहनलाल छाबड़ा

ललितपुर (उ.प्र.)—इस वर्ष पर्यूषण पर्व पर ललितपुर में आदरणीय विद्वान पंडित कन्नूभाईजी पन्नालाल शाह दाहोद का शुभागमन हुआ। जिससे जैनधर्म की अपूर्व प्रभावना हुई। स्थानीक दिगम्बर जैन नया मंदिरजी में प्रतिदिन तीनों समय पंडितजी के धार्मिक प्रवचनों का विशाल जैन-समाज ने लाभ उठाया। शाम को छह बजे से ८ बजे तक भक्ति, प्रभावना भी पंडितजी द्वारा कराई गयी एवं अंतिम तीन दिन रात्रि में चैत्यालयजी के सामने सार्वजनिक प्रवचन हुये। जिसमें दस-दस हजार श्रोता उपस्थित रहे।

अंत में दि. जैन स्वाध्यायमंडल, जैन समाज, लोहा-पीतल व्यवसायी संघ, एवं बुद्धिजीवी वर्ग द्वारा पंडितजी का अभिनंदन-पत्रों द्वारा सम्मान किया गया।

हम पूज्य स्वामीजी एवं सोनगढ़ संस्था के आभारी हैं। **—धन्नालाल गुढ़ा, ललितपुर**

लोहारदा (म.प्र.)—पर्यूषण-पर्व पर सोनगढ़ के विद्वान पंडित श्री मनीभाईजी मुनाईवाले पधारे। नित्य सुबह दोपहर एवं रात्रि को क्रमशः समयसार नाटक मोक्षशास्त्र एवं मोक्षमार्गप्रकाशक का प्रवचन होता था तथा क्लास भी चलती थी; बच्चों के लिये भी क्लास का समय रखा था सभी बच्चे क्लास में आते थे। ग्राम के सभी जैन भाईयों-बहनों ने प्रवचन में भाग लिया एवं धर्मलाभ लिया। यहाँ की समस्त दिगंबर जैन समाज परम पूज्य श्रद्धेय श्री सद्गुरुदेव की अत्यंत ही आभारी हैं तथा करबद्ध प्रार्थना करती है कि इस छोटे से ग्राम पर हमेशा ऐसी की कृपादृष्टि रखकर हमेशा ऐसे विद्वानों को भेजकर हमारे पर अत्यंत कृपा करें। समस्त दिगंबर जैन समाज का श्रद्धेय सद्गुरुदेव के चरणों में शत-शत वंदन। **—मानकचंद पाटोदी, अध्यक्ष**

सनावद (म.प्र.)—इस वर्ष हमारे नगर में पर्यूषण पर्व एवं पंडित अभयकुमारजी जबलपुरवाले पधारे थे। आप प्रतिदिन सुबह, दोपहर एवं रात्रि को प्रवचनों द्वारा सरल एवं सुगम भाषा में वस्तु का यथार्थ स्वरूप समझाते थे। इससे मुमुक्षु भाई-बहिनों को अच्छा धर्मलाभ मिला। **—सोनचरण जैन**

—: आवश्यक सूचना :—

श्री वीतराग विज्ञान विद्यापीठ परीक्षाबोर्ड की परीक्षाओं में प्रवेश हेतु फार्म भरे जा रहे हैं। संबंधित संस्थाओं को प्रवेशफार्म भेजे जा चुके हैं। जिन्हें फार्म मिल चुके हैं, वे शीघ्र भरकर भेजें, जिन्हें नहीं मिले हैं, वे तथा जो उक्त परीक्षाबोर्ड से परीक्षा दिलाने के इच्छुक हैं; ऐसे नये केन्द्र बोर्ड के कार्यालय से फार्म निःशुल्क मंगा लेवें।

परीक्षायें जनवरी १९७६ के अंतिम सप्ताह अथवा फरवरी के प्रथम सप्ताह में रखी जायेगी।

मंत्री, परीक्षाबोर्ड

टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर-४

मुमुक्षु जीवन का ध्येय

❀ ज्ञानी-संतों के शरण में निवास करता हुआ मुमुक्षु अपने जीवन में एक ही ध्येय रखता है कि मैं अपने आत्मा की साधना करूँ।

❀ अपने इस सर्वोच्च ध्येय की सिद्धि के लिये वह दिन-रात उत्कृष्ट उत्साहपूर्वक प्रयत्न करता है।

❀ ऐसा उद्यम करनेवाला जीव अन्य साधर्मियों के प्रति भी उसे अत्यंत वात्सल्यभाव उल्लसित होता है।

❀ अपने उत्तम ध्येय को साधने के लिए मुमुक्षु को ज्ञानभावना और वैराग्यभावना उसे जीवन में साथीदार हैं। जगत की किसी भी पंचात में वह रस नहीं लेता... आत्मिकरस के घोलन में ही उसे रस है।

❀ देव-गुरु-शास्त्र की सेवा में वह अत्यंत उत्साह से वर्तता है, और उनके आदर्श द्वारा अपने ध्येय की साधना करता है। देव-गुरु के आत्मगुणों को पहिचानकर अपने में उनकी प्रेरणा लेता है।

❀ सांसारिक जीवन में सुख-दु:ख की चाहे जैसी अनुकूलता-प्रतिकूलता में भी वह अपने ध्येय को शिथिल नहीं करता। तथापि उत्तम पुरुषों के आदर्श जीवन को अपनी दृष्टि समक्ष रखकर वह आराधना का उत्साह बढ़ाता है... आत्मा की महिमा बढ़ाता जाता है।

❀ यह जीवन है, वह आत्मा को साधने के लिये है, इसलिये उसकी एक भी क्षण निष्फल ना जाये और प्रमाद रहित आत्मसाधना के लिये प्रत्येक क्षण व्यतीत हो जाये, इसलिये वह जागृत रहता है और जीवन में ऊँच-नीच के चाहे जैसे प्रसंगों में भी वह अपने आत्मसाधना का ध्येय शिथिल नहीं करता है।

❀ प्रतिदिन आत्मा में मग्न होने का प्रयत्न करता है। अकेले-अकेले आत्मा के एकत्व को शोध-शोधकर अंतर की शांति का स्वाद लेने के लिये प्रयत्न करता है।—ऐसा मुमुक्षु आत्मा को अवश्य साधता है और अपूर्व शांति को प्राप्त होता है।

नि....ज.... भा....व....ना....

❀ आत्मवस्तु परम महिमावंत है। यदि आत्मा की महिमा न हो तो फिर जगत में अन्य किसी की महिमा करना? भाई! महिमावंत वस्तु ही स्वयं आत्मा है, उसकी महिमा लाकर उसे ध्येय बना, उसे ध्येय बनाने पर सम्यग्दर्शन कार्य अवश्य हो जायेगा।

❀ मोक्ष के लिये हे जीव! तुम्हें शुद्धरत्नत्रय करनेयोग्य है; उन रत्नत्रय के कारणरूप ऐसे कारणपरमात्मा को तू अत्यंत शीघ्र भज—वह तू ही है। बाह्य में कहीं तेरा कारण नहीं है; अंतर में तेरा परमस्वरूप है, उसी को तू कारणरूप से भज।

❀ अहो! मेरा आत्मा स्वयं परमस्वभावरूप कारणपरमात्मा विराजता है—इसप्रकार निजात्मा को देखनेवाला धर्मात्मा जीव, पर्याय में परभाव होते हुए भी शुद्धदृष्टि से अपने को अंतर में कारणपरमात्मारूप से देखता है; अतः उसे किसी परभाव में आत्मबुद्धि नहीं होती, उनसे अपने को भिन्न ही देखता है।

❀ परभाव है, वह परभावरूप है—उस समय मैं कैसा हूँ? सहज गुणमणि की खाण हूँ, पूर्ण ज्ञान और सहज आनंद मेरा स्वरूप है—इसप्रकार परभाव से पृथक्करण करके धर्मात्मा स्वयं को शुद्ध अनुभव करता है, इसलिये वह शुद्धता को भजता है, परभाव को नहीं भजता।

❀ पर्याय में परभाव होने पर भी उन्हें छोड़कर एक गुणनिधान आत्मा का ही जो अनुभव करता है, वह तीक्ष्णबुद्धि है; इंद्रियों से पार होकर तीक्ष्णबुद्धि द्वारा अर्थात् अतीन्द्रिय-ज्ञान द्वारा उसने अपने शुद्ध आत्मा को अनुभव में लिया है।

❀ शुभराग में अथवा शास्त्र-अध्ययन इत्यादि में रुकी हुई बुद्धि को तीक्ष्णबुद्धि नहीं कहते, वह तो स्थूल है; अज्ञानी को ऐसा स्थूलभाव तो आता है। गुण-भेद के विकल्प भी स्थूल हैं। राग से पृथक् हुई चैतन्यसन्मुख बुद्धि को ही तीक्ष्णबुद्धि कहते हैं। ऐसी तीक्ष्णबुद्धि द्वारा सम्यग्दृष्टि जीव मोक्ष को साधता है।

प्रकाशक : श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र) (३६३)
मुद्रक : मगनलाल जैन, अजित मुद्रणालय, सोनगढ़ (सौराष्ट्र) प्रति ३०००